वार्षिक रु. ८० मूल्य रु. १०

विवेक ज्योति

वर्ष ५३ अंक ३ मार्च २०१५

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

मार्च २०१५

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५३
अंक ३

वार्षिक ८०/– **एक प्रति १०/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ३७०/–
आजीवन (२० वर्षों के लिए) – रु. १,४००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १३०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

परम पूज्य स्वामीजी, ... विवेक ज्योति कई बदलावों के साथ और भी निखरकर निरन्तर प्राप्त हो रही है। इसके लिए मैं सादर बधाई देती हूँ। - **निधि, जमशेदपुर**

परम आदरणीय सम्पादक महोदय...विवेक ज्योति के सभी लेख सारगर्भित हैं, तो भी रामकथा 'रामकिंकरजी' का लेख और अत्यधिक जन-समुदाय को आकर्षित कर रामकथा में रुचि ला रहा है। सम्पादक जी से नम्र निवेदन है रामकथा को अधिक पृष्ठों में देने की कृपा करें, जिससे लोगों में पत्रिका के प्रति श्रद्धा बढ़े और लाभ मिल सके, जैसे सोने में सोहागा। – **सीताराम शास्त्री, तिल्दा, बलौदा बाजार**

...विवेक ज्योति आज के भौतिक विकास की दौड़ में निस्सन्देह एक कल्याणकारी कार्य में लगी है।

– डॉ. विनीता दीक्षित द्विवेदी, बी. एच. यू. वाराणसी

सम्माननीय स्वामीजी ...मैं आपकी पत्रिका को बहुत पसन्द करता हूँ, जो ठाकुर, माँ और स्वामीजी के महान जीवन-चरित के अज्ञात घटनाओं को प्रदान करती है।

– डॉ. रवि गुप्ता

मैंने इस अंक के प्रकाशित लेखों, रचनाओं को पढ़ा। विषय वैविध्य और प्रासंगिकता का सुमेल है। लेखन तथा सम्पादन की गुणवत्ता भी बहुत अच्छी है। स्वामी विवेकानन्द की आदर्शप्रियता साकार और सुशोभित होती नजर आती

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है। **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। **३.** लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें। **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें **५.** पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें। **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

चैत्र नवरात्रि के शुभ अवसर पर 'विवेक-ज्योति' के पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएँ। सुख-समृद्धि एवं आध्यात्मिक चेतना के जागरण की देवी माँ की आराधना कर अपनी अन्तश्चेतना और अनन्त शक्ति का जागरण करें।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द जी की यह मूर्ति रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ, हावड़ा (पश्चिम बंगाल) की है। विश्वविद्यालय में प्रवेश करने पर ठीक सामने ही यह मूर्ति स्थापित है। स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने जीवन-काल में एक विश्वविद्यालय का स्वप्न देखा था, जो आज साकार हो रहा है और भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों में से एक है।

वर्ष ५३ मार्च २०१५ अंक ३

श्रीराम का स्वरूप और रामनाम-महिमा

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता ।
कहहिं सुनहिं बहु बिधि सब सन्ता ।।
सोई सच्चिदानन्द घन रामा ।
अज बिग्यान रूप बल धामा ।।
ब्यापक ब्याप्य अखण्ड अनन्ता ।
अखिल अमोघ सक्ति भगवन्ता ।।
अगुन अदभ्र गिरा गोतीता ।
सबदरसी अनवद्य अजीता ।।
निर्मम निराकार निरमोहा ।
नित्य निरंजन सुख सन्दोहा ।।
भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप ।।
राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रह्लाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ।।
राम नाम कलि अभिमत दाता ।
हित परलोक लोक पितु माता ।।
मोर सुधारिहि सो सब भाँती ।
जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ।।
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा निहकाम ।।

(श्रीरामचरितमानस से संकलित)

पुरखों की थाती

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
नादन्ति सस्यं खलु वारिवाहाः
परोपकाराय सतां विभूतयः ।।४४०।।

– जैसे नदियाँ अपने जल को स्वयं नहीं पीतीं, वृक्षगण अपने फलों को स्वयं नहीं खाते, पानी बरसाने वाले बादल अपने पैदा किये हुए अन्य को स्वयं नहीं खाते, वैसे ही महापुरुषों की विभूतियाँ (गुण तथा सम्पत्तियाँ) उनके अपने भोग हेतु नहीं, परोपकार के लिए होती हैं।

पिता रत्नाकरो यस्य, लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा ।
शंखो रोदिति भिक्षार्थी, फलं भाग्यनुसारतः ।।४४१

–जिसके पिता रत्नों की खान समुद्र और बहन साक्षात् लक्ष्मी हैं, ऐसे वंश का होकर भी शंख भिक्षा पाने हेतु रुदन करता रहता है; इससे यह सिद्ध होता है कि व्यक्ति को भाग्य के अनुसार ही फल मिलता है।

पित्रोः नित्यं प्रियं कुर्याद्-आचार्यस्य च सर्वदा।
तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ।।४४२।।

– व्यक्ति को सर्वदा अपने माता-पिता तथा आचार्य को प्रसन्न रखना चाहिये, क्योंकि इन तीनों के सन्तुष्ट होने पर सारी तपस्या पूर्ण हो जाती है।

पिपीलिकार्जितं धान्यं मक्षिका-संचितं मधु ।
लुब्धेन संचितं द्रव्यं, समूलं च विनश्यति ।।४४३।।

– चींटी द्वारा एकत्रित अन्न, मधुमक्खी द्वारा संचित मधु और लोभी व्यक्ति द्वारा एकत्रित धन – ये तीनों ही समूल नष्ट हो जाते हैं।

विविध भजन

चलो मन रामकृष्ण के पास

सुखदराम पाण्डेय, लखनऊ

चलो मन रामकृष्ण के पास ।
बहुत हुआ जग के धन्धे में बची न कोई आस ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।
बीता बचपन आयी जवानी, वृद्धावस्था पर अनजानी ।
जन्म-संग जीवन-पयोधि में, जन्मी आखिरी साँस ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।
सुबह हुई सूरज निकला था, तपती हुई दुपहरी आयी ।
दीप जले घर के आंगन में, शनैः हुई अब शाम ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।
सहते और सहमते बीते, समय-चक्र के क्षण-प्रतिक्षण सब,
नहीं लगा कुछ पता उम्र का, गुजर गया सब कुछ कैसे कब ।
जो कुछ मिला अधूरा आधा, आया न कुछ भी रास ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।
पछताता बातें करता तन उजड़ी बस्ती का दीवाना,
ठहर सका न किसी ठौर पर, लगा रहा बस आना-जाना ।
बटी रेवड़ियाँ सबके हक में, खुद को मिला न खास ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।
भोगा जीवन रोग-शोकमय, आयीं-गयीं वीरानी बातें,
सिर्फ अँधेरा लेकर आयीं, घर मेरे अनजानी रातें ।
तड़पे अपनापन पाने को, मिटी न अब तक प्यास ।।
चलो मन रामकृष्ण के पास ।

जगदम्बे-भवानी

कमलसिंह सोलंकी 'कमल', होशंगाबाद

(बुन्देली लोकगीत धुन)

भक्तों की आशा पूरी करें, जगदम्बे भवानी ।
हाँ, हाँ, जी जगदम्बे भवानी ।
श्रीरामकृष्ण की आराध्य देवी,
स्वामी विवेकानन्द ने सेवी ।
माथा नवा नित हजूरी करें, जगदम्बे भवानी ।।
आदि शक्ति कालिका भवानी,
जग पर राज करें महारानी ।
साधें अधूरी पूरी करें, जगदम्बे भवानी ।।
दुर्गा सम दानी मिले नहिं जग में,
राजा-महाराज पड़े रहें पग में ।
वाहन सिंह सवारी करें, जगदम्बे भवानी ।।
दरबार माँ के लगे रहे मेला,
'कमल' विदेशी और देशी है चेला ।
नारियल, ध्वज,पान, सुपारी धरें, जगदम्बे भवानी ।।

श्रीराम जयराम जय जय राम

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

शंकर के हिय में गूँजे यही नाम ।
श्रीराम जयराम जय जय राम ।।
पूर्ण ब्रह्म हैं प्रभु श्रीराम,
शाश्वत सत्य सनातन राम ।
मेरे मन तू सदा ही पुकारो,
श्रीराम जयराम जय जय राम ।। श्रीराम..
दीनबन्धु हैं ईश्वर राम,
प्रेमसिन्धु परमेश्वर राम ।
धर्म की मूरति प्रभु श्रीराम,
श्रीराम जयराम जय जय राम ।। श्रीराम..
पतितपावन दशरथ-राम,
नारद-मोह विनाशक राम ।
अवधपुरी के जन-जन के प्यारे,
कौशल्या के नन्दन राम ।।श्रीराम..
ऋषि-मुनि रक्षक अवध के राम,
कागभुशुंडी के प्रिय राम ।
सुर-नर-मुनि चर-अचर के स्वामी,
अशरण शरण हैं मेरे राम ।। श्रीराम..

स्वच्छ भारत अभियान : एक अभिनव क्रान्ति के अग्रदूत स्वामी विवेकानन्द

सम्पादकीय

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा अर्जुन को कुरुक्षेत्र की रणभूमि में उपदेश हुए कहा, **'शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य'** – साधक को पवित्र स्थान पर बैठकर मन को एकाग्र कर योग का अभ्यास करना चाहिये। वास्तव में बाहरी स्वच्छता का हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। आन्तरिक शुद्धि, हार्दिक निर्मलता का बाहरी स्वच्छता से सम्बन्ध है। मानसिक शान्ति की प्राप्ति हेतु बाह्य स्वच्छता और आन्तरिक शुद्धता का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। योग-साधना के लिये शारीरिक स्वस्थता और मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता होती है। मानसिक एकाग्रता के लिये मन को विक्षिप्त करनेवाली विषय-वस्तुओं को हटाकर मन को साफकर, मन को लक्ष्य में लगाया जाता है। मन का विक्षेप अन्दर के अतिरिक्त बाहरी वस्तुओं और परिवेश से भी होता है। अस्वस्थ व्यक्ति का मन रोगादि के विकारों से विक्षुब्ध और अशान्त हो जाता है, जिसके कारण वह अपने मन को लक्ष्य में एकाग्र नहीं कर पाता। रोग के कई कारण हैं, उसमें एक कारण है स्वच्छता का अभाव।

स्वच्छता

स्वच्छता का शाब्दिक अर्थ निर्मलता है। जहाँ कोई मल न हो, कोई विकार न हो, साफ हो, विशुद्ध हो। स्वच्छता कई प्रकार की होती है। जैसे शारीरिक स्वच्छता, मानसिक स्वच्छता, बौद्धिक स्वच्छता, सांस्कृतिक स्वच्छता, प्रशासनिक स्वच्छता, प्राकृतिक स्वच्छता इत्यादि।

उपरोक्त सभी चीजों में विकृति आने पर वह मानव-जीवन को प्रभावित करती है। ये विकृतियाँ मानव के कभी शरीर, कभी मन, कभी बुद्धि और कभी उसकी आत्मा को भी प्रभावित कर उसे अस्वस्थ, विचलित, भ्रमित और दुखी कर देती हैं। इसलिये इनका निराकरण आवश्यक है। इन विकृतियों का परिष्करण जरूरी है। जब इनका आमूल रूप से परिष्कार होगा, तभी मानव वास्तविक शान्ति और सुख प्राप्त कर सकता है। तभी व्यक्ति वर्तमान विकसित भौतिक वैज्ञानिक तकनीकि का सदुपयोग कर अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। ये विकृतियाँ क्या हैं और इन पर कैसे नियन्त्रण पा सकते हैं, इस पर हम संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

शारीरिक स्वच्छता और पर्यावरण

शारीरिक स्वच्छता का पर्यावरण से गहरा सम्बन्ध है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ यदि लें, तो परि+आवरण। अर्थात् जो चारों ओर से आच्छादित है। जो हमें चारों से आवृत किये हुये है, ऐसी चीजों का प्रभाव तो सबसे पहले शरीर पर पड़ेगा, उसका अन्य किसी चीज पर प्रभाव भले ही बाद में पड़े। जैसे शुद्ध-अशुद्ध वायु का अनुभव तो सबको तुरन्त होता है। शुद्ध वायु तुरन्त ताजगी देती है और अशुद्ध वायु कभी सामयिक और कभी लम्बे समय के लिये हमें अस्वस्थ कर देती है। वैसे ही शुद्ध जल हमें कई बीमारियों से मुक्ति दिला देता है, अशुद्ध जल कई बीमारियों को जन्म देता है। शुद्ध स्वच्छ भोजन हमें स्वस्थ रखता है, अशुद्ध अपवित्र गंदे स्थानों का खाद्यपदार्थ बीमार कर देता है। गंदे कपड़े पहनने से विभिन्न प्रकार के चर्मरोग होते हैं। स्वच्छ वस्त्र हमारे शरीर को स्वस्थ और मन में ताजगी प्रदान करता है। उसी प्रकार अपने भवन, कमरे, अपना परिसर साफ नहीं रखने से कई संक्रामक बीमारियाँ होती हैं, साफ रखने से हम कई बीमारियों से निःशुल्क सहज मुक्ति पा जाते हैं। गंदे जगहों पर साँप-बिच्छु रहते हैं और कितने अबोध-बाल-वयस्क को कालकवलित कर देते हैं। कूड़ा-कचरा कहीं भी फेंकने और उपरोक्त किसी भी प्रकार की गन्दगी करने से हमारा पर्यावरण दूषित होता है और मानव को उसका दुख उठाना पड़ता है। अतः हमें सबसे पहले अपने पर्यावरण को अपने जीवन की शुद्धता और स्वच्छता द्वारा शुद्ध और स्वच्छ रखना चाहिये। यह प्रत्येक भारत के नागरिक का प्रथम कर्तव्य है।

लोक-संस्कृति में स्वच्छता

लोकसंस्कृति, ग्रामीण संस्कृति स्वच्छता की प्रथम पाठशाला है। प्रातः ही माताएँ घर को झाड़ू से साफकर, गोबर से लीप-पोत कर सफाई करती हैं। घर के बर्तनों को माँजकर स्नान कर भगवान की पूजा के बाद खाना बनाती हैं। सफाई धर्म है, पुण्य है, ऐसा वे मानती हैं। यह हमारी प्राचीन काल से चली आ रही परम्परा है, जो आज भी हमें गाँवों में देखने को मिलती है। लेकिन उन्हें स्वच्छता के अन्य पहलुओं से अवगत कराना है।

स्वच्छता के अग्रदूत स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द भारतीय संस्कृति के महान संरक्षक

और देश के सामाजिक और आध्यात्मिक जागरण के महानायक थे। वे लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर भारत की तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत हुए। उन्होंने भारतीयों की अच्छाइयाँ, यहाँ की कुप्रथाओं और कुसंस्कारों को भी समीप से देखा था। उन्होंने भारतीय ग्रामीण जन-जीवन का बड़ी सूक्ष्मता से अवलोकन किया था। इसके बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि भारतवासियों में उच्च चरित्र और श्रेष्ठ विचार, पवित्र मनोभाव तो हैं, किन्तु उनके रहन-सहन में काफी सुधार की आवश्यकता है। बाहरी सफाई के अभाव में उन्हें बहुत सी बीमारियों से कष्ट उठाना पड़ता है, लेकिन वे रोगों के मूल कारण से अनभिज्ञ रहते हैं। वे अपने प्राच्य और पाश्चात्य निबन्ध में लिखते हैं – ''आचार ही पहला धर्म है। आचारभ्रष्ट से क्या कभी धर्म होता है? अनाचारी का दुख नहीं देखते हो, देखकर भी नहीं सीखते हो। इतनी महामारी, हैजा, मलेरिया किसके दोष से होता है? हमारे दोष से। हम ही महा अनाचारी हैं।'' एक अन्य स्थान पर वे व्यंग्य करते हुए लिखते हैं – ''हमलोगों के यहाँ स्नान किए हुए ब्राह्मण-देवता धोए, माँजे हुए बर्तन में शुद्ध होकर पकाते हैं और गोबर से लिपी हुई जमीन पर थाली रखते हैं। ब्राह्मण देवता के कपड़े पसीने से मैले हो जाते हैं, उनमें से बदबू निकलने लगती है। कभी केले का पता फटा होने से मिट्टी, मैला, गोबर युक्त रस एक अपूर्व स्वाद उपस्थित करता है !!

''हमलोग स्नान तो करते हैं, पर तेल लगा हुआ, मैला कपड़ा पहनते हैं और यूरोप में मैले शरीर में बिना स्नान किए हुए साफ-सुथरी पोशाक पहनी जाती है। इसे अच्छी तरह समझो, यहीं पर जमीन-आसमान का अन्तर है। ...हिन्दुओं का घर-द्वार धो-माँजकर साफ रखा जाता है, चाहे उसके बाहर नरक का कूड़ा ही क्यों न हो ! बिलायतवालों की फर्श पर झकझकाती कालीन पड़ी रहती है, कूड़ा-कर्कट उसके नीचे ढँका रहने से ही काम चल जाता है ! हिन्दुओं का पनाला रास्ते पर रहता है, जिससे बहुत दुर्गन्ध निकलती है, विलायतवालों का पनाला रास्ते के नीचे रहता है, जो सन्निपात का घर है ! हिन्दू भीतर साफ रहते हैं, बिलायतवाले बाहर साफ रहते हैं।'' (वि.सा. -१०/७१-७२)

घर में कूड़े का ढेर रखना महापाप है : स्वामी विवेकानन्द

अपने उसी व्याख्यान में स्वामी विवेकानन्द जी लिखते हैं – ''हिन्दू लोग मैले से अत्यन्त घृणा करते हैं, फिर भी हम बहुत मैले रहते हैं। हमको मैले से इतनी घृणा है कि जिसने मैला छूआ, उसे स्नान करना पड़ेगा। इसलिये दरवाजे पर मैले के ढेर को हम सड़ने देते हैं। केवल हम उसका स्पर्श नहीं करते हैं। पर इधर नरक-कुण्ड का वास होता है, उसका क्या? एक अनाचार के भय से दूसरा महाघोर अनाचार ! एक पाप से बचने के लिये हम दूसरा महापाप करते हैं ! **जो अपने घर में कूड़े का ढेर रखता है, वह अवश्य ही पापी है, इसमें सन्देह ही क्या है।** उसका दण्ड भोगने लिए उसे न तो दूसरा जन्म लेने की आवश्यकता होगी और न बहुत दिनों तक प्रतीक्षा ही करनी होगी।''

स्वच्छता हेतु स्वामीजी का परामर्श

अत: स्वामी विवेकानन्द जी ने भारत में अखिल भारतीय स्वच्छता अभियान का प्रारम्भ १८वीं शताब्दी में ही कर दिया था। वे अपने गुरु-भाइयों को भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य और संस्कृति के बारे में जन-मानस को अवगत कराने हेतु प्रेरित करते हैं। प्राच्य-पाश्चात्य के विवरण में वे भारतवासियों को स्वच्छता का परामर्श देते हैं। वे लिखते हैं – ''हमें क्या करना चाहिए? हमें स्वच्छ शरीर पर साफ कपड़े पहनना चाहिए। एकान्त में मुँह धोना चाहिये, दाँत माँजना चाहिए। अपना घर साफ रखना चाहिए। रास्ता-घाट साफ होना चाहिए। साफ रसोइये के द्वारा साफ हाथों से पकाए हुए भोजन स्वच्छ सुन्दर स्थान में बैठकर साफ बर्तन में खाना चाहिए।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द स्वच्छ भारत अभियान के प्रथम अग्रदूत हैं।

भारतीय जन-मानस में स्वच्छता के महान संदेशक : महात्मा गाँधी

भारत के गाँव-गाँव में पद-यात्रा कर जन-साधारण में शिक्षा, स्वास्थ्य और सफाई के संदेशक मोहनदास करमचन्द गाँधी जी ने भारत में नव-जागरण लाकर देशवासियों को सचेत किया। एक क्रान्ति चलाई। वे स्वयं गाँव-गाँव जाकर गन्दगी को अपने सिर पर ढोकर गाँवों को साफ किए और लोगों में स्वच्छता के संस्कार दिए। उनकी जन्म-तिथि पर स्वच्छ भारत का संकल्प अत्यन्त प्रासंगिक एवं देश के लिए हितकर है। इसे सफल करने हेतु प्रत्येक भारतीय को दृढ़ संकल्प लेना चाहिए। **(क्रमशः)**

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों, व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में कहीं-कहीं उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का संकलन अँग्रेजी में 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक से और बँगला में 'आमि विवेकानन्द बोल्छी' नामक दो ग्रन्थ प्रकाशित हुये। दोनों ग्रन्थों के सहयोग एवं कुछ विशेष सामग्री के साथ वर्तमान संकलन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सम्पादक)

बेलूड़ मठ, ४ जुलाई, १९०२ : यदि एक और विवेकानन्द रहता, तो समझ पाता कि विवेकानन्द क्या कर गया। परन्तु यथासमय ऐसे सैकड़ों विवेकानन्द जन्म लेंगे।[४०]

(काश्मीर में एक दिन एक बीमारी के पश्चात् स्वामीजी ने दो प्रस्तर खण्डों को हाथ में लेकर कहा था) "जब भी मृत्यु मेरे पास आती है, तो मेरी सारी दुर्बलता लुप्त हो जाती है। तब मुझमें भय या सन्देह या बाह्य-जगत् का विचार – यह सब कुछ भी नहीं रहता। मैं केवल अपने आपको मृत्यु के लिए प्रस्तुत करता रहता हूँ। उस समय मैं इतना कठोर हो जाता हूँ (यह कहकर उन्होंने अपने हाथ के प्रस्तर खण्डों को आपस में टकराया), क्योंकि मैंने भगवान के चरण स्पर्श किए हैं![४]

यदि कभी भी किसी को सांसारिक वस्तुओं की व्यर्थता का बोध हुआ है, तो इस समय मुझे हो चुका है। यह संसार घृण्य, जघन्य मुर्दे के समान है। जो इसकी मदद करने की सोचता है, वह मूर्ख है! पर हमें अच्छा या बुरा करते हुए ही अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न करना होगा। मुझे आशा है कि मैंने ऐसा ही किया है। प्रभु मुझे उस मुक्ति की ओर ले चलें![४२]

मेरे पास जो कुछ भी था, उसे मैं उस देश (अमेरिका) में छोड़ आया हूँ। वहाँ व्याख्यान देते समय मेरे शरीर से एक शक्ति निकलकर श्रोताओं में प्रविष्ट हो जाया करती थी। ..

यदि मैं कौपीन पहनकर भरण-पोषण के उपायों आदि की चिन्ता छोड़कर साधना में डूब जाऊँ, तो शायद मुझमें निर्विकल्प समाधि देने की क्षमता आ जाय। अमेरिका में व्याख्यान देते-देते यह शक्ति खर्च या नष्ट हो गयी है

मैंने अपनी शक्ति भर काम किया है। यदि उसमें सत्य का कोई बीज है, तो वह यथाकाल अंकुरित होगा। ... मेरी अन्तरात्मा साक्षी है कि मैं आलसी संन्यासी नहीं रहा। मेरे पास एक नोटबुक है, जिसने सारे संसार में मेरे साथ यात्रा की है। मैं उसमें सात वर्ष पहले यह लिखा हुआ पाता हूँ – "अब एक ऐसा एकान्त स्थान मिले, जहाँ मैं मृत्यु की प्रतीक्षा में पड़ा रह सकूँ।" परन्तु यह सब कर्मभोग बाकी था।[४४]

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मैंने बहुत से स्वदेशवासियों को जाग्रत कर दिया है और मैं यही चाहता था। अब जो कुछ होना है, होने दो; कर्म के नियम को अपनी गति के अनुसार चलने दो। मुझे यहाँ इस लोक में कोई बन्धन नहीं है। मैंने जीवन देखा है और वह सब स्वार्थ के लिए है – जीवन स्वार्थ के लिए, प्रेम स्वार्थ के लिए, मान स्वार्थ के लिए, सभी चीजें स्वार्थ के लिए। मैं पीछे दृष्टि डालता हूँ, तो यह नहीं पाता कि मैंने कोई भी कर्म स्वार्थ के लिए किया है। यहाँ तक कि मेरे बुरे कर्म भी स्वार्थ के लिए नहीं थे। अत: मैं सन्तुष्ट हूँ; यह समझ कर नहीं कि मैंने कोई विशेष अच्छा या महान् कार्य किया है, अपितु संसार इतना क्षुद्र है, जीवन इतना तुच्छ है और जीवन में इतनी विवशताएँ हैं कि मैं मन-ही-मन हँसता हूँ और आश्चर्य करता हूँ कि मनुष्य, जो विवेकी जीव है, इस क्षुद्र स्वार्थ के पीछे दौड़ता है – ऐसी कुत्सित तथा घृणित वस्तु के लिए लालायित रहता है।

यही सत्य है। हम एक जाल में फँस गये हैं और जितनी जल्दी उससे निकल सकेंगे, हमारे लिये उतना ही अच्छा होगा। मैंने सत्य को देख लिया है, शरीर के रहने या जाने की भला कौन परवाह करता है?[४५]

वस्तुओं के स्वभाव की दृष्टि से देखा जाय, तो संसार की किसी भी चीज को समझना कठिन है। और अब आजीवन श्रम करने के बाद ऐसा लगता है कि मैंने थोड़ा-सा ही समझा है और जब मैं वह ज्ञान दूसरों को देने की सोच रहा हूँ, तो ऊपर से पुकार सुनाई दे रही है – आ जा, तत्काल आ जा, दूसरों को उपदेश देने के विषय में सिर मत खपा। बूढ़ी (महामाया) नहीं चाहती कि खेल समाप्त हो जाय।[४६]

खेद इस बात का है कि यदि मुझ जैसे दो-चार व्यक्ति भी तुम्हारे साथी होते – तो सारा संसार हिल उठता।[४७]

अब मैं थोड़ी शान्ति चाहता हूँ; कार्य के बोझ को वहन करने की शक्ति अब मुझमें नहीं है। जितने दिन जीवित रहना है, मैं विश्राम और शान्ति चाहता हूँ। जय गुरु, जय श्रीगुरु। ... व्याख्यान आदि में कुछ भी नहीं रखा है। बस, शान्ति।[४]

मुझे अपने गुरुदेव की तरह काम-कांचन और कीर्ति से विमुख सच्चा संन्यासी बनकर मरने दो; और इन तीनों में कीर्ति का लोभ सबसे अधिक मायावी होता है![४]

तुम लोग सोचते हो, मेरे बाद शायद और कोई विवेकानन्द नहीं होगा। ... संसार को जरूरत हुई, तो विवेकानन्दों का अभाव नहीं रहेगा। न जाने कहाँ से हजारों-लाखों विवेकानन्द आकर प्रकट हो जायेंगे! यह निश्चित जानना कि यह विवेकानन्द का काम नहीं है; यह तो उनका काम है – स्वयं प्रभु का। एक गवर्नर जनरल के जाने के बाद उसकी जगह दूसरा निश्चित रूप से आयेगा।[५०]

'जिस प्रकार पेड़ की डालियों पर सोती हुई चिड़ियाएँ जग जाती हैं और सुबह होते ही गाती हुई ऊपर गहन नीलाकाश में उड़ जाती हैं, उसी प्रकार मेरे जीवन का अन्त भी है।'

मुझे अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं और इसके साथ ही कई महान् सफलताएँ भी मिलीं। परतु मेरी तमाम कठिनाइयों और कष्टों का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि अन्त में मैं सफल हुआ हूँ। मैंने अपना लक्ष्य पा लिया है। मुझे वह मोती मिल गया है, जिसके लिए मैंने जीवन-रूपी सागर में गोता लगाया था। मैं पुरस्कृत हुआ हूँ। मैं सन्तुष्ट हूँ। ...

मैं अपने बुरे प्रारब्ध के बादलों को उठता और लुप्त होता हुआ देख रहा हूँ। और मेरे अच्छे कर्मों का चमकता हुआ सुन्दर और शक्तिशाली सूर्य उग रहा है।[५१]

४०. The Life of Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, 1989, Vol 2, P. 652; **४१.** The Master as I saw Him, Sister Nivedita, सं. १९६२, पृ. ३२९; **४२.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३४१-४२; **४३.** Swami Vivekananda in the West : New Discoveries, Advaita Ashrama, 1999, Vol 4, P. 520; **४४.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृ. ३८१; **४५.** वही, खण्ड ६, पृ. ३३३; **४६.** Spiritual Talks, by First Disciples of Sri Ramakrishna, Advaita Ashrama, 1936/2002, P. ३०२; **४७.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ४, पृ. ३७८; **४८.** वही, खण्ड ८, पृ. ३०९; **४९.** वही, खण्ड १०, पृ. २१७; **५०.** वही, खण्ड ८, पृ. २५५-५६; **५१.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६१;

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

१२५. चाटुकारिता बेहद बुरी

अकबर को जब मालूम हुआ कि हुसैन मिर्जा बागी हो गया है और विद्रोह की सेना तैयार कर उनका नेता बन गया है, तो उसने सेनापति को मिर्जा को बंदी बनाकर पेश करने को कहा। सेनापति ने बड़ी फौज तैयार की। जब उसे पता चला कि मिर्जा अहमदाबाद की तरफ कूच कर गया है, तो उसने पीछा कर उसे घेर लिया। मिर्जा को बंदी बनाकर जब अकबर के समक्ष लाया गया, तो उसने सैनिकों से पूछा,'' इस बागी को किसने पकड़ा? खिलअत और इनाम पाने की लालच में सैनिक अपनी अपनी वीरता का दम्भ भरने लगे। अकबर पसोपेश में पड़ गया और उसने मिर्जा से ही पूछा, ''फैसला तुम्हारे हाथ में है, मिर्जा बताओ, तुम्हें किसने पकड़ा है?'' मिर्जा हाजिर जवाब था, उसने उत्तर दिया, ''आपके नमक ने पकड़ा हुजूर। ये तो उसी नमक के पुतले हैं। मैं किस-किसका नाम लूँ? जवाब से बादशाह खुश हो गया। जान गया कि सैनिकों के संयुक्त प्रयास से मिर्जा गिरफ्तार हुआ है। इनाम के लालच में सैनिक उसे पकड़ने का श्रेय ले रहे हैं। उसने मिर्जा को ताकीद दी और देश से निष्कासित करने की सजा दी।

सामने वाले की वाहवाही करना चापलूसी है। सेवक मालिक की चाटुकारी करना पसन्द करते हैं और स्वामिभक्त होने का ढोंग रचते हैं। मालिक के नमक का कर्ज उतारने के लिये वे सेवा तो करते हैं, किन्तु मालिक को खुश रखने के लिये असत्य का सहारा लेते हैं। इसलिये ऐसे चाटुकारों से बचना जरूरी होता है।

मार्च माह के जयन्ती और त्योहार

०५	होलिका दहन/चैतन्य महाप्रभु जयन्ती
१०	स्वामी योगानन्द
२१	चैत्र नवरात्रारंभ
२८	रामनवमी
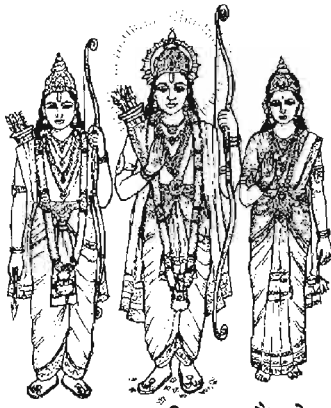
धर्म-जीवन का रहस्य (६/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

उस युग की बात मैं सोचता हूँ, तो कभी हँसी भी आती है और आश्चर्य भी होता है कि ऐसा कैसे हो सकता है कि कोई जा सके, पर लौटकर न आ सके। वक्ताओं को लगता था कि यह गणित किसी काम का नहीं है। अंगद यदि जा सकते हैं, तो आ क्यों नहीं सकते? तो वे शब्दों को तोड़-मरोड़ कर लोगों को सन्तुष्ट करते थे। कहते – अंगद ने कहा कि मैं पार चला जाऊँ और आप लोगों को कोई संशय हो, तो 'तीबारा' यानी फिर से तीसरी बार इस समुद्र को पार करके दिखा सकता हूँ। इससे ऐसा तो लगता है कि हाँ, इससे अंगद की महिमा बनी रही। परन्तु आध्यात्मिक जीवन के एक महान् तत्त्व को ध्यान में न रखने के कारण ही रामायण का ऐसा अर्थ लेने की चेष्टा की जाती है। तो प्रवृत्ति में कितने लोग उलझ जाते हैं, कितने लोग फँस जाते हैं, उसकी कोई सीमा नहीं है।

एकमात्र श्री हनुमानजी ही ऐसे हैं, जो पैठना भी जानते हैं और निकलना भी। मानस में वह सांकेतिक भाषा आती है। हनुमानजी समुद्र के ऊपर से जा रहे हैं, तो मानो देहाभिमान से ऊपर उठकर जा रहे हैं। समुद्र है देहाभिमान। समुद्र ने मैनाक को उत्साहित किया कि हनुमानजी तुम्हारे मित्र के पुत्र हैं, तुम ऊपर उठो और इन्हें निमन्त्रण दो। मानो समुद्र की यह चुनौती थी कि आप मुझे बिना छुए ऊपर-ही-ऊपर चले जा रहे हैं, तो इसमें क्या विशेषता, जरा नीचे उतर कर तो आइए, तब तो आपकी विशेषता की परीक्षा होगी। मैनाक स्वर्ण का पर्वत था। उसने कहा – मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। उसने हनुमानजी को आमन्त्रित किया। परन्तु हनुमानजी ने उस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। इसके माध्यम से हनुमानजी जिस सत्य को बताना चाहते थे, वह यह है कि **साधक को अनावश्यक चुनौतियों को स्वीकार करने की व्यग्रता नहीं दिखानी चाहिए।** साधना का पथ बड़ा जटिल है। यदि कोई साधक पग-पग पर बुराइयों को चुनौती देता चले, तो वह कहीं भी उलझ सकता है। और चुनौती से हमेशा भागने की चेष्टा करे, तो भी वह समस्याओं को पार नहीं कर सकता।

जैसे कोई काम की समस्या को चुनौती देने के लिए बार-बार काम के ही वातावरण में रहकर देखने की चेष्टा करे कि मैंने काम को जीत लिया है या नहीं। तो यह अनावश्यक है। वह इसमें उलझ सकता है। अत: जब मैनाक पर्वत ने हनुमानजी से कहा – आइए, विश्राम कर लीजिए, तो उन्होंने विनम्रतापूर्वक क्षमा माँग ली और आगे बढ़ गये –

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी।
तैं मैनाक होहि श्रम हारी ।। ५/१/९
हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम ।। ५/१

समुद्र को हँसी आई – आखिरकार भाग खड़े हुए, मुझे छूने का साहस नहीं हुआ। रामायण की बड़ी सांकेतिक भाषा है। हनुमानजी ने लंका को जलाने के बाद पहला काम क्या किया? वे सीधे समुद्र में कूद पड़े –

उलटि पलटि लंका सब जारी।
कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ।। ५/२६/८

मित्र, तुमने निमन्त्रण दिया था, अब मैं आ गया। इसमें एक संकेत था। समुद्र कह सकता था – उस दिन निमन्त्रण नहीं स्वीकार किया और आज अनिमन्त्रित ही आ गये? हनुमानजी का संकेत था कि जब तक मैं साधना के पथ पर चल रहा था, तब तक ऊपर से चले जाने में ही कल्याण था, पर अब तो माँ की कृपा से कृतकृत्य होकर आ गया हूँ। अत: अब तुम्हारी चुनौती स्वीकार करने में कोई भय नहीं है। हनुमानजी तो वस्तुत: शंकरावतार हैं, तो भी जब उन्हें माँ ने आशीर्वाद दे दिया और उसके बाद उन्होंने प्रवृत्ति को जलाकर भस्म कर दिया, तभी उन्होंने समुद्र में प्रवेश किया।

पग-पग पर माँ के आशीर्वाद की परीक्षा हुई। आशीर्वाद पाकर हनुमानजी ने (मोह की) वाटिका तो उजाड़ ही दिया, प्रवृत्ति के लंका दुर्ग को भी जलाकर भस्म कर दिया। स्वर्णमयी लंका का इतना वैभव, इतना सौन्दर्य, पर वह भी न उन्हें आकृष्ट कर सका और न ही उनके मन में कोई विकृति उत्पन्न कर पाया। तब मानो कृतकृत्य हुए हनुमानजी समुद्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि

'कृतकृत्यता' या सिद्धि के बाद ऐसा सम्भव है कि व्यक्ति शरीर में प्रवेश करे, तो उसके दुर्गुणों का उस पर कोई प्रभाव न पड़े। समुद्र ने हनुमानजी से यही तो कहा था – विश्राम कीजिए; और हनुमानजी ने क्या किया? – थकान मिटाई –

पूँछ बुझाइ खोइ श्रम ... ... ।। ५/२६

इसका सांकेतिक अर्थ क्या है? हमारा शरीर जो संसार के कामों में श्रमित होता है, तो वह एक प्रकार का श्रम है; और राम के कार्य का जो श्रम है, वह भिन्न प्रकार का है। गोस्वामीजी ने कहा – कौन व्यक्ति नहीं थकता? हम लोग जीवन में चल ही तो रहे हैं, दिन-रात कर्म करते हुए थक ही तो रहे हैं। तो थकना चाहिए या नहीं? थकना अति आवश्यक है। **व्यक्ति चलेगा नहीं, तो उसे भूख ही नहीं लगेगी; श्रम नहीं करेगा, तो अच्छी नींद भी नहीं आयेगी।** अत: चलना चाहिए, श्रमित होना चाहिए। पर उन्होंने विनय-पत्रिका में कहा कि यदि तुमको श्रमित ही होना है तो –

चंचल चरन लोभ-लालच लगि
द्वार द्वार जग भागे।
राम सीय आश्रमनि चलत त्यों
भए न श्रमित अभागे।।

व्यक्ति जब भगवत्-पथ पर चलता हुआ, साधना के श्रम को स्वीकार करता है, तो वह श्रम भी धन्य हो जाता है। हनुमानजी ने अपने मार्ग में इस स्थिति का जो परिचय दिया, वह साधना का एक पक्ष है। परन्तु चुनौती दूसरे प्रकार की भी आ सकती है। व्यक्ति स्वयं तो चुनौती से बचने की चेष्टा कर सकता है, पर चुनौती ऐसी आ जाय, जो रास्ता ही अवरुद्ध कर दे, तब? हनुमानजी के साथ भी ऐसा ही हुआ। समुद्र और मैनाक से तो सहज ही छुट्टी मिल गई, पर उसके बाद सुरसा आ गई। आप रामायण की गहराइयों में जितना ही प्रवेश करेंगे, उतना ही आपको लगेगा कि साधना-पथ की, साधक की जितनी भी समस्याएँ हैं, उन सबका समाधान आपको उसी में आसानी से मिल जायगा।

अब सुरसा कहती है – मैं भूखी हूँ, देवताओं ने मुझे भेजा है और मैं तुम्हें खाना चाहती हूँ। आपने ध्यान दिया? जब समुद्र ने कहा – नीचे उतरो, यह उसकी चुनौती थी कि तुम देह से ऊपर उठे हुए चले गये, तो क्या पता कि तुम देहभाव पर विजयी हो या नहीं; और सुरसा का व्यंग्य यह था कि मैंने सुना है कि तुम तो देह से सर्वथा ऊपर हो। अभी तुम्हारी प्रशंसा हुई है। अब इसकी तो एक ही कसौटी है कि मुझे भूख लगी हुई है, मैं तुम्हें खाऊँगी और यदि तुम आपत्ति न करो, तो समझूँ कि तुम देहभाव से ऊपर हो। हनुमानजी को सुरसा से प्रमाण-पत्र लेने की कोई जरूरत नहीं थी।

कई लोग तो प्रमाण-पत्र के लिए बहुत अच्छा काम भी कर लेते हैं। एक व्यंग्यात्मक गाथा किसी ने सुनाई थी। कुछ संन्यासी एकत्र हुए, तो चर्चा चलने लगी कि किसने कैसे संन्यास लिया? एक महात्मा मौन थे। उनसे पूछा गया, तो बोले – भई, सत्य तो यह है कि मैं बना नहीं, लोगों ने ही मुझे संन्यासी बना दिया। – कैसे बना दिया? बोले – मैं तो कभी सत्संग में भी नहीं जाता था। गाँव में कोई महात्मा आकर बैठे हुए थे और सत्संग में उपदेश दे रहे थे। मैं उधर से जा रहा था, तो महात्माजी ने पूछा – ये कौन सज्जन हैं? गाँववालों ने व्यंग्य की भाषा में कहा – यह तो हमारे गाँव का सर्वश्रेष्ठ सत्संगी है। महात्मा इतने सरल थे कि उन्होंने विश्वास कर लिया। बोले – आओ भगत, बैठो। अब मुझे संकोच यह लगा कि लोगों ने भले व्यंग्य में कहा है, परन्तु इन्होंने तो सच मान लिया, अब बैठ ही जाना चाहिये। फिर मुझे नित्य जाना पड़ा। कुछ दिनों बाद लोग व्यंग्य करने लगे कि अब तो ये घर में टिकेंगे नहीं, ये घर-बार अवश्य छोड़ देंगे। जब चर्चा आगे बढ़ी, तो मैंने छोड़ ही दिया।

कभी-कभी व्यक्ति इस इच्छा से भी कुछ कार्य करता है कि लोग कहें कि ये ऐसे हैं। यह वासना दूर नहीं होती। किसी को इच्छा रहती है कि धन प्राप्त हो; और वह इच्छा कम हो जाय या मिट जाय, तो इच्छा हो जाती है कि कोई यह तो कहे कि ये त्यागी हैं, ये श्रेष्ठ हैं –

कोउ भल कहउ देउ कछु,
असि बासना न उरते जाई।। विनय. ११९/२

हनुमानजी के सामने बड़ी कड़ी परीक्षा थी। सुरसा कहती है कि यदि तुम मुझे अपने शरीर को खाने से रोकते हो, तो कैसे मानें कि तुम शरीर से ऊपर उठे हुए हो। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि तुम्हारी अपने शरीर पर ममता है। परन्तु हनुमानजी को यदि सुरसा के प्रमाण-पत्र की जरूरत होती, तब तो अर्थ का अनर्थ हो जाता। साधक शरीर को स्वीकार तो करता ही है। दूसरे शब्दों में, साधक देहभाव पर विजयी तो हो जाता है, परन्तु जब तक उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी, तब तक वह शरीर का उपयोग करेगा ही। तो क्या हनुमानजी दूसरों से प्रशंसा पाने के लिए अपने शरीर को सौंप दें? हनुमानजी ने सुरसा से कहा – मैं प्रभु का सन्देश किशोरीजी को सुना दूँ और किशोरीजी का सन्देश प्रभु को सुना दूँ, उसके बाद मैं तुम्हारे मुख में पैठ जाँऊगा –

राम काजु करि फिरि मैं आवौं।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं।।

तब तव बदन पैठिहउँ आई ।
सत्य कहउँ मोहि जान दे माई ।। ५/२/४-५

साधक शरीर को तब तक बचाए रखना चाहता है, जब तक उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो जाती । उसके बाद जब उसका उद्देश्य पूर्ण हो गया, तब शरीर रहे या चला जाय – इस बात की उसे परवाह नहीं रहती । वेदों में कहा गया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता –

तन बिनु बेद भजन नहिं बरना ।। ७/९५/५

हनुमानजी ने सुरसा को जो उत्तर दिया, वही विवेक की स्थिति है । परन्तु उन्हें चुनौती देनेवाली सुरसा – मैनाक पर्वत के समान सरलता से मान जाने वाली नहीं थी । वह बोली – नहीं, मैं तो अभी खाऊँगी । हनुमानजी के सामने समस्या थी – अब क्या किया जाय? हनुमानजी उससे भी बचना चाहते थे । परन्तु वह एक बड़ी चुनौती आ गई – मैं तो तुम्हें अभी खाऊँगी । बोली – तुम तो बड़ी अनोखी बात कह रहे हो, जब तुम वह कार्य पूरा कर लोगे, तब मैं तुम्हें खा कहाँ पाऊँगी? साधक तभी तक तो खाये जाने की स्थिति में रहता है, जब वह साधन पथ है; सिद्धि के बाद तो वह इस देहाभिमान के भय से मुक्त हो जाता है ।

हनुमानजी के सामने बाध्यता थी । यहाँ भी वही सूत्र है । सुरसा मुँह फैलाती है और हनुमानजी दूने होते जाते हैं । पर अन्तिम सूत्र क्या है? – सुरसा ने जब सौ योजन का मुँह फैलाया, तो हनुमानजी दो सौ योजन के हो सकते हैं, परन्तु हनुमानजी अत्यन्त छोटे बन गये और सुरसा के मुँह में पैठ गये । सुरसा बाहर ढूँढ रही है कि बन्दर चला कहाँ गया? पर बन्दर कहीं दिखाई नहीं दे रहा है । हनुमानजी उसके मुख से बाहर आ गये । सुरसा ने प्रसन्न होकर कहा – तुम बल-बुद्धि के निधान हो, अत: भगवान का कार्य सम्पन्न कर सकोगे –

राम काजु सबु करिहहु
तुम्ह बल बुद्धि निधान ।। ५/२

– कैसे पता चला? बोली – यही तो मैं परीक्षा लेना चाहती थी कि तुम लंका में पैठकर फिर निकल भी पाओगे या नहीं? लंका सौ योजन की है, इसीलिए मैंने सौ योजन का मुँह फैलाया । उस लंका में जाकर लौटने की प्रतिभा का परिचय तुमने दे दिया । तुम इतने महान हो कि तुम उसमें पैठ भी सकते हो और निकल भी सकते हो । यही सूत्र है । हनुमानजी ने प्रवृत्ति में प्रवेश किया और प्रवृत्ति से निकल कर, प्रवृत्ति के दुर्ग को भस्म करके प्रभु के पास चले आए ।

रामायण में एक बड़ी अच्छी बात आती है । समुद्र पर सेतु बँध जाने पर बहुत-से बन्दर जलचरों की पीठ पर चढ़ कर और बहुतों ने आकाश-मार्ग से समुद्र को पार किया –

सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं ।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ।। ६/४

कई बार लोग पूछते हैं कि जब पहली बार लंका जाने का प्रश्न उठा, तो कोई भी जाने को तैयार नहीं था; और अब ये इतनी संख्या में वानर आकाश मार्ग से कैसे जा रहे हैं? संकेत यह था कि जब तक प्रवृति की लंका बनी हुई थी, तब तक किसी उसमें प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ था; और जब हनुमानजी जैसे वैराग्यवान ने प्रवृत्ति के दुर्ग को जला कर राख कर दिया, तब चिन्ता की कोई बात ही नहीं रही; जब उस फँसानेवाले दुर्ग का अस्तित्व ही नहीं है, तब अन्य सभी बन्दरों को साहस हुआ कि अब समुद्र को पार किया जा सकता है । उसमें जो संकेत है, यह जीवन से जुड़ा हुआ है ।

इसी प्रकार भगवान विष्णु ने भी जब नारदजी से कहा – 'मैं तुम्हारा हित करूँगा', तो उसके मर्म पर विचार किये बिना ही वहाँ से चल पड़े । मैं तुम्हारा हित करूँगा – कितना स्पष्ट वाक्य था । भगवान जब नारद से बोले कि 'वैद्य रोगी को कुपथ्य नहीं देता', तो भी नारद नहीं समझ रहे हैं । इतना तो एक नासमझ व्यक्ति भी सुनकर समझ लेगा । भगवान ने यदि गोल-मोल करके बोल दिया होता कि अच्छा, मैं तुम्हारा हित करूँगा, इतना स्पष्टीकरण न देते, तब तो शायद बात समझ में नहीं आती । परन्तु भगवान कह रहे हैं कि जैसे वैद्य रोगी को कुपथ्य नहीं देता, वैसे ही मैं तुम्हारा हित करूँगा । फिर क्या हुआ? यहाँ भी वही मनोवैज्ञानिक सूत्र है ।

नारद ने पूरा सुना ही नहीं । बहुत कम ऐसे लोग होते हैं, जो पूरी बात सुनते या सोचते हैं । नारदजी ने कितना सुना? नारदजी भगवान का रूप माँगने आए थे, भगवान ने ज्योंही कहा, मैं तुम्हारा हित करूँगा, वे चल दिये । वे आगे क्या कह रहे हैं, इसको सुनकर क्या करना? कल्पना के सहारे वे स्वयंवर सभा में पहुँच गये – भगवान ने सुन्दर बना दिया है, विश्वमोहिनी जयमाला डाल रही है, उनको साथ लेकर आ रहा हूँ । भगवान को हँसी आ गई । मेरे सामने खड़ा है, परन्तु मेरे शब्द नहीं सुन रहा है । बाद में नारदजी उलाहना देने लगे – यह आपने क्या किया? भगवान ने हँसकर कहा – उस समय मैंने जो कहा था, वही तो किया । परन्तु इस बार भी नारदजी ने नहीं सुना । जब व्यक्ति के मन में वासना भरी हुई हो, तो वह ईश्वर की वाणी को भी पूरी तौर से नहीं सुन पाता । यह पूरी तरह से न सुन पाना नारदजी के जीवन में बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न करता है । **(क्रमश:)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (२९)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न - दूरदर्शन, दूरश्रवण और अन्तर्यामित्व, क्या ये सभी सिद्धियाँ हैं ?

महाराज - नहीं, इन्हें ठीक-ठीक सिद्धियाँ नहीं कहा जा सकता। ये आध्यात्मिक-मार्ग में उन्नति के मील के पत्थर (milestone of progress) हैं। किन्तु यदि कोई इसी में फँस जाय, तो यह उसकी सिद्धि हो जाती है। गिरिजा और चन्द्र में सिद्धियाँ थीं। उस लक्ष्य तक पहुँचते ही ये सिद्धियाँ समाप्त हो जाती हैं। किन्तु ठाकुरजी का लक्ष्य उससे भी बहुत अधिक ऊँचा था। वास्तव में सूक्ष्म-वस्तु का चिन्तन करते-करते साधक का मन भी सूक्ष्म होता जाता है। तब वह सूक्ष्म-सूक्ष्म विषयों को बिना प्रयास के ही समझ जाता है। उसे यह अस्वाभाविक, असाधारण नहीं लगता है, बहुत ही स्वाभाविक, सहज प्रतीत होता है।

प्रश्न - क्या स्वपाक आहार आदि सम्भव है? क्या शाकाहारी होना होगा?

महाराज - तुम ऐसा कुछ नहीं खाओगे, जिससे तुम्हारे शरीर में उत्तेजना हो और छुआछूत ! अभी ये सब नहीं चलेगा। किन्तु संस्पर्श का दोष है।

प्रश्न - प्रसाद में ठाकुरजी की दृष्टि पड़ रही है, क्या उसे सामान्य लोग समझ पाते हैं?

महाराज - नहीं, नहीं !

कभी भी तुम अकेले मत रहना, अकेले रहने से कब कुसमय में क्या दुर्घटना कर दोगे, पता नहीं। दो लोग एक साथ रहने से दोनों परस्पर रक्षा करते हैं। इसीलिये तो संघबद्ध होकर एक साथ जीवन-व्यतीत करने की व्यवस्था की गयी है। महापुरुष महाराज यहाँ तक कि किसी को तपस्या करने भी अकेले नहीं जाने देते थे। वे कहते थे कि कम-से-कम दो-लोग जाओ। साधु को कितना सावधान रहना पड़ता है।

एक ब्रह्मचारी भोजन के बाद मुखशुद्धि – लौंग, इलायची आदि विशेष कुछ नहीं लेता था। आज थोड़ा अधिक भोजन हो जाने से, उसने कहा, एक पान खाता हूँ। उस दिन पंगत में ही पान की व्यवस्था थी।

महाराज - यह देखो, फिर से भोग बढ़ा रहा है ! एक बार खाने से ही फिर से खाने की इच्छा होगी। यह सब कुसंग का फल है।

१-७-१९६०

प्रश्न - ठाकुरजी में तो अहंकार नहीं था। इसीलिये हम लोग देखते हैं कि वे हमेशा कह रहे हैं - 'माँ ने दिखाया।' क्या उन्हें इस सम्बन्ध में सावधान रहना पड़ता था?

प्रेमेश महाराज - इसे अभिनय कहने से कहना पड़ेगा कि यह उनका ढोंग है। किन्तु जब वे आये हैं, तब उन्हें परब्रह्म कहने से नहीं चलेगा। उस समय समझना होगा कि वे अवतार रूप में लीला कर रहे हैं। शंकराचार्यजी के 'जात इव' शब्दों के कारण समस्या हुयी है। यदि तुम कहते हो कि वे नाटक कर रहे हैं, तब तो सम्पूर्ण विश्व के खेलों को अभिनय समझना होगा। उनकी यह लीला तभी नाटक बोध होगी, जब देही देह-मन-बुद्धि के ऊपर उठकर इस लीला को देखेंगे। इसके पहले यह लीला पूर्णतः सत्य है।

सेवक - हम लोग छोटे आधार हैं, हम लोगों के लिये द्वैत ही अच्छा है।

महाराज - तब तो संन्यासी नहीं बनना होगा।

सेवक - क्यों? संघ संन्यास !

महाराज - संघ ही बोलो और जो भी बोलो - संन्यास नहीं हो सकता है। किन्तु अभ्यास-योग है। द्वैतवादी – वह केवल मौन रहकर अपने ईष्ट के चिन्तन में तन्मय रहता है, दूसरे धर्मों से कोई राग-द्वेष नहीं रहेगा। केवल स्वयं जप-तप करते-करते मन जितना ही अन्दर की ओर जाएगा, उतना ही वह प्रगति करता रहेगा। किन्तु यह देह-बुद्धि द्वैतभाव में नहीं जाएगी और अद्वैतभाव में प्रारम्भ में ही इस देह-मन-बुद्धि के बन्धन का त्याग नहीं किया जा सकता। किन्तु प्रयास करना होगा।

४.७.१९६०

प्रश्न - यदि ध्यान नहीं होता है, तो क्या ज्ञान, कर्म और भक्ति का अभ्यास करने से नहीं होगा ?

उत्तर - ज्ञान, कर्म और भक्ति, ये तीनों ही सहज हैं,

लेकिन ध्यान कठिन है। किन्तु यही तो मापदण्ड है कि तुम्हारे तीनों योग सही दिशा में जा रहे हैं या नहीं। ये सब तो लोक-प्रदर्शन के लिये भी किया जा सकता है। बुद्धि रहने से शास्त्रों को अच्छी तरह आत्मसात् किया जा सकता है। ये सब देखकर ही श्रीचैतन्यदेव संन्यास देकर नहीं गये। संन्यासी बहुत नीतिवान होगा। नीतिवान का अर्थ विद्वान नहीं होता, इसका अर्थ होता है – चरित्रवान, सत्यवादी, निडर, श्रद्धावान, परोपकारी और जितेन्द्रिय। इस प्रकार अभ्यास करते-करते आध्यात्मिक-चिन्तन की धारा प्रवाहित होगी।

५.७.१९६०

प्रेमेश महाराज - सामान्य व्यक्ति जानता ही नहीं कि इस देह-मन-बुद्धि के अतीत 'मैं' हूँ। आध्यात्मिकता का अर्थ देह-मन-बुद्धि को पूर्णरूप से जानना और इसके अतीत मैं हूँ, उसे भी जानना है। यही सच्चा धर्म है। धर्म आध्यात्मिकता का सोपान मात्र है।

आश्चर्य का विषय है कि यह आध्यात्मिकता विश्व के किसी भी धर्म में नहीं है। दुख की बात है कि वह भारतवर्ष में भी विलुप्त होती जा रही थी। हमलोग जो वेदान्ती आन्दोलन (Vedantic Movement) देखते हैं, वह सब भी विश्वविद्यालय में ऊपरी तौर पर पढ़ने जैसा है। केवल वैराग्यहीन विद्वान हो रहे हैं। इस बार प्रेस के कारण सुरक्षित रहेगा, बाद में सब लोग आयेंगे।

सोचो तो कितना आनन्द होगा, जब स्वयं को अलग करके शरीर के भीतर प्राण-मन-बुद्धि के खेल को स्पष्ट देख सकूँगा। एक महीना बाद मैं देखता हूँ कि सिर के बाल एक इंच बड़े हो गये, क्या वे एकदिन में हो गये? प्रतिदिन थोड़े-थोड़े बड़े हो रहे हैं। कुछ खाद्य-पदार्थ पेट में जाने मात्र से कितनी प्रकियाएँ होने लगती हैं। सार-तत्त्व को ग्रहण करन के लिए प्राण को बहुत श्रम करना पड़ता है।

सारा दिन मन व्यग्र होकर दौड़ा-दौड़ी करके समाचार ला रहा और दे रहा है तथा बुद्धि से निर्देश चाहता है। लगता है कि बुद्धि अन्धी है, इसलिये एक जगह बैठे-बैठे मन के द्वारा सभी कार्य कर रही है। किन्तु एक है चित्त, जो संस्कार देख-देख के मिलाकर निर्देश दे रहा है। मन निद्रा के समय बुद्धि में विलीन जाता है। जैसे बिजली दिन में पावर हाउस में रहती है और रात्रि में अपना विस्तार करती है। यह सब खेल घंटा-पर-घंटा बैठ कर देखा जाता है।

सेवक - छोटा आश्रम हो, तो अच्छा होता है।

महाराज - आश्रम चयन करने की कोशिश न करके ठाकुरजी की इच्छा पर निर्भर होकर रहो। जब भी जहाँ पर भी कार्य करोगे, साधना के रूप में करना होगा, पहले गीता के श्लोक का पाठ करके कर्म प्रारम्भ करना।

एक भक्त - श्रीचैतन्यदेवजी के धर्म ने सम्पूर्ण देश को मतवाला कर दिया है। लेकिन लगता है कि ठाकुरजी का धर्म केवल बुद्धिजीवियों के लिये है। यहाँ पर भीड़ करना निषेध है। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ने से प्रतीत होता है कि कौन है, जो ठाकुरजी की अपेक्षाओं पर खरा उतर सके?

महाराज - किसने तुम्हें यह कहा कि ठाकुरजी केवल बौद्धिक लोगों के लिए हैं? क्या ठाकुरजी ने भक्तों के साथ हरि-कीर्तन नहीं किया? क्या त्रैलोक्यबाबू को तीर्थ-यात्रा करने के लिये नहीं कहा? क्या श्रीचैतन्यदेव ने केवल कीर्तन, उत्सव और प्रसाद के लिये ही कहा है? क्या उनके जीवन को किसी बुद्धिमान व्यक्ति के अलावा अन्य कोई समझ सकता है? उन लोगों ने एक आदर्श स्थापित किया है। क्या तुम्हारे श्रीरामकृष्ण देव ने समाज-सेवा और परोपकार करने के लिये कहा है? हम लोग उनके ढाँचे को समाज के कार्य में लगा रहे हैं। जो लोग श्रीरामकृष्ण देव के तत्त्व की चर्चा कर रहे हैं, क्या केवल वे लोग ही ठाकुरजी का अनुसरण कर रहे हैं और जो लोग उनका सेवा-कार्य, प्रसाद-ग्रहण और पूजा-अर्चना कर रहे हैं, क्या वे लोग उनके अनुयायी नहीं हैं? असली बात है, जिसे जो अनुकूल हो, जो जिसे अच्छा लगे। अवतार के जीवन को अनेकों लोग विभिन्न प्रकार से समझकर वहीं से यात्रा प्रारम्भ कर देंगे। विश्वविद्यालयों में तो विश्व की विभिन्न शिक्षाएँ प्रदान की जाती हैं। एक एम. ए. के अध्यापक को देखकर विश्वविद्यालय का नमूना समझ में आ जाता है। किन्तु जिसने प्रवेशिका की परीक्षा उत्तीर्ण कर अभी-अभी विश्वविद्यालय में प्रवेश किया है, क्या उसे विश्वविद्यालय का छात्र नहीं कहोगे? वह भी तो उसी मार्ग में यात्रा किया है। उसी प्रकार कोई संगीत, कोई भाषण कोई जप और कोई पाठ के द्वारा उसी पथ पर यात्रा किया है। हम लोग प्रयास कर रहे हैं। यही करते-करते जीवन महान हो जाएगा। क्या श्रीचैतन्यदेव के अनुयाई शुद्धाभक्ति का अभ्यास कर सकते थे? किन्तु प्रयास करते-करते ही उनका जीवन महान हो जाता।

स्वामीजी की इच्छा है, इस बार शुद्रों का जागरण होगा। देखो, किसी के प्रयत्न से नहीं, स्वयं ही सभी वर्गों के बच्चे स्कूल में पढ़ रहे हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, तीनों वर्ग ही जाने के कगार पर हैं। अभी शुद्र जागेंगे और वे लोग ही देश को जगाएँगे। **(क्रमशः)**

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (३)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामाजी ने कोलकाता में दिया था, इसका सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है।)

यहाँ पर भी यही कहा गया कि यह ब्रह्म विद्या भी चिकित्सक है। यह क्या चिकित्सा करती है? यह ब्रह्मविद्या भवरोग की चिकित्सा करती है – **अविद्यादि संसार-कारणम् च अत्यन्तम् अवसादयति विनाशयति** – यह संसार-कारण अविद्या का समूचा नाश करती है। मेरे जीवन में जितने भी दुख हैं, वे भवरोग से उत्पन्न हो रहे हैं और यह ब्रह्मविद्या उनकी चिकित्सा कर हमें दुखों से मुक्त कर देती है। जब मैं इस ब्रह्मविद्या के पास आत्मभाव से यह मानकर जाता हूँ – हे विद्ये ! तू ही मेरा कल्याण कर सकती है, तेरे द्वारा ही जीवन के दुख-कष्टों का उपशम हो सकता है, तो यह हमारे दुखों का नाश कर देती है – **इमां ब्रह्मविद्याम् उपयान्ति आत्मभावेन श्रद्धा भक्ति पुरसराः सन्तः।** इस ब्रह्मविद्या के लिये हृदय में श्रद्धा-भक्ति हो, विश्वास हो, तब क्या होता है? **तेषां जन्म-जरा-रोगादि अनर्थ-पुगम्** – जितने भी अनर्थ हैं, समस्त जन्म-जरा-रोगादि अनर्थों के समूह का नाश करती है और **परम् वा ब्रह्म गमयति** - उस परम ब्रह्म के पास हमें पहुँचा देती है।

यह उपनिषद है। एक-एक उपनिषद का एक-एक अलग अलग दृष्टिकोण है, किन्तु सत्य वही है। ये सारे के सारे उपनिषद हमें उस सत्य तक पहुँचा देते हैं, पर रास्ता कुछ भिन्न है। देखने का तरीका कुछ भिन्न है, पर मूल जो बातें हैं, वे मूल बातें सबमें समान हैं, शैली में भिन्नता है, जिससे रोचकता बनी रहती है। एक ही प्रकार की शैली में एक ही बात को अलग-अलग ग्रंथों में लिखा जाय, तो आपको पढ़ने में कोई रुचि नहीं होगी। आप कहेंगे, छोड़ो जी, एक ही बात लिखी हुई है। ये जितने उपनिषद अलग-अलग शैली में लिखे हुए आपको मिलते हैं, उनका जो सत्य के प्रति दृष्टिकोण है, उस दृष्टिकोण में नवीनता है। ये सभी उपनिषद उस सत्य को पाना चाहते हैं, परन्तु अलग-अलग ढंग से हमें सत्य के पास ले जाना चाहते हैं। जैसे केनोपनिषद में शिष्य आकर के गुरु के पास साक्षात् प्रणत हुआ, सेवा की और उसके बाद उसने प्रश्न पूछा –

केनेषितम् पतति प्रेषितं मनः,
केन प्राणः प्रथमः प्रैतियुक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति,
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।। १।।

यह पहला मंत्र है। यहाँ प्रश्न पूछा गया – केनेषितम्... किसकी इच्छा से मन प्रेषित हुआ-सा अपने पदार्थों की ओर जाता है, अपने विषयों की ओर जाता है? किसकी प्रेरणा से वाणी बोलती है? आँखों को देखने के लिये और कानों को सुनने के लिये कौन देवता प्रेरित करता है?

अब यह तो विचित्र-सा प्रश्न लगता है ! यदि कोई मेरे पास आये और यूँ ही पूछे कि अच्छा, मन अपने विषयों की ओर क्यों जाता है? किसकी इच्छा से जाता है? आँखें क्यों देखती हैं? कान क्यों सुनते हैं? प्राणों का प्राणन क्यों होता है? तो मैं क्या कहूँगा? मैं तो यही कहूँगा – पूछने की क्या बात है? आँखें देखती हैं, तो देखती हैं, कान सुनते हैं, तो सुनते हैं। अब किसकी प्रेरणा से सुनते हैं, यह कोई प्रश्न है ! यदि मैं ऐसा करता हूँ, तो मानो मैं इस प्रश्न को साधारण रूप में ग्रहण करता हूँ और जो व्यक्ति प्रश्न पूछ रहा है उसके प्रति मेरी अवज्ञा बुद्धि होती है कि यह क्या प्रश्न पूछता है? यह भी कोई पूछने का प्रश्न है कि आँखें क्यों देखती हैं? कान क्यों सुनते हैं? मन क्यों विचार करता है? किसकी प्रेरणा से विचार करता है? तुम्हें और किसी प्रश्न पर विचार करने का समय नहीं है, इसलिये यह प्रश्न पूछ रहे हो? किन्तु यह अत्यन्त वैज्ञानिक प्रश्न है। ये जो वैज्ञानिक लोग हैं, ये लोग अजीबोगरीब प्रश्न को लेकर बैठ जाते हैं और उसे छोड़ते ही नहीं, जब तक उन्हें उत्तर नहीं मिलता।

एक उदाहरण न्यूटन का है। आप उनकी जीवनी पढ़ते हैं। एक दिन वे बगीचे में बैठे थे। अचानक उनकी नजर सेव के पेड़ पर पड़ी। पेड़ से एक सेव का फल टूटा और नीचे गिरा। न्यूटन ने कितनी बार फलों को टूट कर नीचे गिरते हुए देखा होगा, कितनी बार स्वयं बचपन में उसने स्वयं फल गिराये होंगे, पर आज अचानक इस क्षण उसके मन में यह विचार कौंधा कि यह फल टूट कर नीचे क्यों गिरा, ऊपर क्यों नहीं गया? अब मन में वह इस प्रश्न का चिन्तन कर रहा है। उसने अपने मित्रों से पूछा होगा – अच्छा भाई !

फल टूटकर नीचे क्यों गिरा? लोगों ने कहा कि बड़े सनकी हो ! यह पूछने का प्रश्न है कि फल टूट कर क्यों नीचे गिरा? अरे ! फल तो टूट करके नीचे ही गिरता है, ऊपर कहाँ से जायेगा? तो यह सामान्य सी बात है। कितना अजीबोगरीब वह प्रश्न था ! कितने ताने सुनने पड़े न्यूटन को ! लोगों ने छींटाकशी की, पर न्यूटन ने अपने प्रश्न को नहीं छोड़ा ! अजीबोगरीब भले ही प्रश्न हो, पर न्यूटन लगा ही रहा कि फल टूट कर नीचे क्यों गिरा? और उत्तर गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त के रूप में मिला, जिसके सम्बन्ध में आप जानते हैं, जो विज्ञान का आधार है। तो जैसे वैज्ञानिक अजीबोगरीब प्रश्न को लेकर बैठ जाता है, वैसे ही उपनिषद में भी ऐसे अजीबोगरीब प्रश्न हैं।

शिष्य के मन में प्रश्न उठा, किन्तु उसने उस प्रश्न को छोड़ नहीं दिया। भले ही लोगों ने कहा हो कि यह प्रश्न अजीबोगरीब है, पर वह शिष्य उसे लेकर बैठ गया। अन्त में उसे वह विलक्षण उत्तर मिलता है ! वह अमृत मिलता है, जिस अमृत को हम उपनिषद कहते हैं। कठोपनिषद में हम देखेंगे कि वहाँ भिन्न प्रकार से सत्य की ओर अग्रसर हुआ गया है। नचिकेता नामक एक छोटा-सा लड़का यमराज के दरबार में पहुँच जाता है। उसे यमराज से तीन वरदान प्राप्त होते हैं। वह तीसरे वरदान के रूप में अपने प्रश्न का उत्तर चाहता है। वह यमराज से पूछता है –

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं
वराणामेष वरस्तृतीयः ।।

कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य मरने के बाद नहीं रहता और कुछ लोग कहते हैं कि मरने के बाद भी बचा रहता है। आप तो मृत्यु के देवता हैं, आप ही ठीक-ठीक बता सकते हैं कि मनुष्य के मरने के बाद क्या होता है? बस, तीसरे वरदान के रूप में आप मेरे इसी प्रश्न का उत्तर दीजिए। सत्य की ओर जाने का यह एक दूसरा तरीका है। मुण्डकोपनिषद में पढ़ेंगे, तो वहाँ पर आपको एक तीसरा तरीका दिखाई देता है। अंगिरा ऋषि के पास महाशाल, महागृहस्थ शौनक जाते हैं और उनसे प्रश्न पूछते हैं – **कस्मिन्नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति** – भगवन ! किसे ज्ञात कर लेने पर सब कुछ ज्ञात हो जाता है। मैं किसको जान लूँ कि सब कुछ का जानना हो जाये। शौनक के भीतर जानने की बड़ी तीव्र स्पृहा थी। उन्हें लगता है कि जीवन इतना अल्प है और ज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है ! अल्प जीवन में मनुष्य क्या-क्या जान सकता है? क्या ज्ञान का कोई अन्त है? जिसको जान लेने से जो कुछ भी ज्ञातव्य है, सब कुछ जान लिया जाये – **यथा एकस्मिन् मृत्पिण्डे विज्ञाते सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्यात्** – जैसे मिट्टी के लोंदे को जान लेने से जो कुछ भी मिट्टी से बना हुआ पदार्थ है, उसका तत्त्व जान लिया जाता है, ऐसे ही ज्ञान का कोई अन्त है क्या? जिसको जान लूँ, तो सब कुछ का जानना हो जाये। यह तीसरा तरीका है।

चौथा तरीका श्वेताश्वतर उपनिषद में है। वहाँ पर कारण पर विचार कर रहे हैं –

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता
जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु
वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम ।।

– श्वेताश्वतर ऋषि ने अपने घर में ब्रह्मगोष्ठी का आयोजन किया। प्राचीन युग में अन्य गोष्ठियों के समान ब्रह्मगोष्ठी का भी आयोजन होता था, जैसे आजकल विज्ञान गोष्ठी, साहित्य गोष्ठी, इतिहास गोष्ठी का आयोजन होता है। इसी प्रकार की ब्रह्मगोष्ठी, जहाँ पर ब्रह्म के सम्बन्ध में चिन्तन चलता था। यह ब्रह्म क्या है? बृह् धातु से निकला शब्द, ब्रह्म का अर्थ होता है फैलना। ऐसा फैलाव, जिससे अधिक फैलाव की कल्पना ही न हो। तो ब्रह्म का तात्पर्य है, जहाँ तक आँखें जायें, जहाँ तक मन जाये, वह सब कुछ ब्रह्म ही है। उस फैलाव से अधिक की कल्पना तो होगी ही नहीं। इस संसार का कारण क्या है? यह फैलाव देश के अर्थ में और मन की दृष्टि से काल के अर्थ में है। आँखों के द्वारा देश दिखाई देता है और काल की जो कल्पना है, वह मन के द्वारा होती है। मन काल में विचरण करता है और हमारी देह देश में विचरण करती है। वहाँ आगत सभी ब्रह्मविदों का ऋषि स्वागत करते हैं। ब्रह्म के जानने वाले को ब्रह्मविद कहते हैं। उन सबके स्वागत के पश्चात कहते हैं – हे ब्रह्मर्षियो ! ब्रह्मविदो ! आपको मैंने इस ब्रह्मगोष्ठी में इस विषय पर चिन्तन करने के लिये बुलाया है। ये प्रश्न हैं – किं कारणम् – इस संसार का कारणभूत ब्रह्म क्या है? इसका यह भी अर्थ हो सकता है यह जो ब्रह्म है, फैलाव है, जो अनन्त देश दिखाई देता है, उसका कारण क्या है? कुतः स्म जाता – हम लोग कहाँ से पैदा हुए हैं? जीवाम केन – हम जीवित हैं तो किसके द्वारा जीवित हैं। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

४९. सारी शक्ति अपने भीतर है

मैं एक बड़े पाश्चात्य विद्वान् द्वारा बतायी हुई एक कथा का वर्णन करूँगा। यह घटना लंका के गवर्नर ने प्रत्यक्ष देखी थी और उन्हें बतायी थी। उनके सामने एक लड़की उपस्थित की गयी और वह छड़ियों को एकत्र करके उन्हें एक-पर-एक रखकर बनाये गये एक 'स्टूल' पर पालथी मारकर बैठ गयी। थोड़ी देर तक वह उस स्टूल पर बैठी रही। इसके बाद खेल दिखाने वाला व्यक्ति क्रमशः एक-एक कर छड़ियाँ हटाने लगा और जब वह सारी छड़ियाँ निकाल चुका, तो लड़की हवा में ही लटकती रह गयी। गवर्नर ने सोचा कि इसमें कोई चालबाजी हो सकती है, अतः उसने अपनी तलवार निकाली और तेजी से उस लड़की के नीचे से घुमायी। परन्तु नीचे कुछ नहीं था। बताओ, यह कैसे हुआ? यह कोई जादू या कुछ असाधारण नहीं था। यही हमारी विशेषता है। भारत में कोई भी नहीं कहेगा कि इस तरह की घटना नहीं हो सकती। हिन्दू के लिए यह एक साधारण बात है। जब हिन्दुओं को शत्रुओं से युद्ध करना होता है, तो जानते हो, वे क्या कहते हैं, "हमारा एक योगी आयेगा और तुम्हारे सारे सैनिकों को मार भगायेगा!" उस राष्ट्र का यही सुदृढ़ विश्वास है। बाहों या तलवार में भला क्या शक्ति है? सारी शक्ति तो आत्मा में निहित है। (४/१७८)

५०. 'तातार' हमारे भीतर बैठा है

तुम उस आदमी की कहानी जानते होगे, जिसने एक तातार को पकड़ लिया था। एक सैनिक नगर के बाहर गया हुआ था। जब वह लौटकर अपने शिविर के पास आया, तो चिल्लाने लगा, "मैंने एक तातार को पकड़ लिया है।"

भीतर से एक आवाज आयी, "उसे अन्दर ले आओ।"

सैनिक बोला, "सर, वह अन्दर नहीं जाता।"

– "तो तुम्हीं भीतर आ जाओ।"

– "सर, वह मुझे भी भीतर नहीं जाने देता।"

इसी प्रकार हम लोगों ने भी अपने-अपने मन में एक-एक 'तातार' को पकड़ रखा है। न तो हम स्वयं ही उसे वशीभूत कर सकते हैं और न वही हमें शान्तिपूर्वक जीने देता है। हम सबने 'तातार' पकड़ रखे हैं। हम सभी कहते हैं कि स्थिर रहना चाहिये, शान्तिपूर्वक रहना चाहिये, आदि आदि; कोई बच्चा भी ऐसा कह सकता है और सोचता है कि ऐसा कर सकता है। परन्तु ऐसा कर पाना वस्तुतः बहुत कठिन है। मैंने भी प्रयास किया है। मैंने अपने सारे कर्तव्यों को छोड़ दिया और पर्वत-शिखरों पर चला गया। मैंने गुफाओं और गहन वनों में निवास किया। परन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ, क्योंकि मैंने भी एक 'तातार' पकड़ रखा था – मेरा संसार सर्वदा मेरे साथ था। हमारे मन में जो कुछ चल रहा है, वही हमारा 'तातार' है, अतः हमें बेचारे बाहर के लोगों पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए। हम कहते हैं – ये परिस्थितियाँ अच्छी हैं और ये बुरी हैं, जबकि 'तातार' हमारे भीतर बैठा हुआ है। यदि हम उसे वशीभूत करने में सफल हो जायँ, तो हमारा सब कुछ ठीक हो जायेगा। (७/१८८-८९)

यह संसार श्रीराम की अयोध्या है

संसार में नहीं रहोगे तो जाओगे कहाँ? मैं देखता हूँ, मैं जहाँ रहता हूँ, वह राम की अयोध्या है। यह संसार राम की अयोध्या है। श्रीरामचन्द्रजी ने ज्ञान प्राप्त करके गुरु से कहा, मैं संसार का त्याग करूँगा। दशरथ ने उन्हें समझाने के लिए वशिष्ठ को भेजा। वशिष्ठ ने देखा, राम को तीव्र वैराग्य है। तब कहा, 'राम! पहले मेरे साथ कुछ विचार कर लो, फिर संसार छोड़ना। अच्छा, प्रश्न यह है, क्या संसार ईश्वर से कोई अलग वस्तु है? अगर ऐसा हो, तो तुम इसका त्याग कर सकते हो।' राम ने देखा, ईश्वर ही जीव और जगत सब कुछ हुए हैं। उनकी सत्ता के कारण सब कुछ सत्य जान पड़ता है।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

भारत की सांस्कृतिक यात्रा : रुद्र से शिव तक

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा

प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(गतांक से आगे)

रुद्र देवता पर्वतों पर निवास करते हैं (वाज. १६.२-४) तथा चर्मवेष्टित अर्थात् चर्म धारण करते हैं। परवर्ती वैदिक साहित्य में शिव का निवास उत्तर दिशा में माना गया है, जबकि अन्य देवताओं का पूर्व में। वैदिकोत्तर सहित्य में शिव की बहुप्रयुक्त उपाधि 'त्र्यम्बक' वैदिक साहित्य में भी प्राप्त होती है – **अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्** (वाज. ३/५८); यहाँ इसका अर्थ है – वह जिसकी तीन माताएँ हों। इससे विश्व का 'त्रिपदीय' अर्थात् तीन स्तरों पर विभाजन उद्दिष्ट है, ये तीन स्तर हैं पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक। रुद्र की गति या प्रभाव सृष्टि के इन तीनों स्तरों पर है। रुद्र के महत्त्व को कई अन्य विशेषणों से भी व्यक्त किया गया है; वे इस विस्तृत संसार पर शासन करते हैं – 'ईशान' (ऋ २.३३.९) और इस संसार के पिता हैं (ऋ ६.४९.१०)। इस प्रकार यद्यपि रुद्र का स्थान ऋग्वेद के प्रधान देवताओं में नहीं है तथापि ये ऋग्वेद के एक ऐसे शक्तिशाली देवता हैं, जिनका व्यक्तित्व उत्तरोत्तर परिष्कृत और संस्कृत होता हुआ पौराणिक काल के सर्वप्रिय और सर्वमान्य आराध्य भगवान् शिव के रूप में परिणत हो गया और जो आज वर्तमान हिन्दू धर्म के सर्वाधिक लोकप्रिय और आदरणीय देव-विग्रहों में एक हैं।

भारतीय संस्कृति में शिव कल्याण, करुणा और लोकसंग्रह का प्रतीक बन गये और सहज ही प्रसन्न होने वाले परम उदार 'अवढरदानी' और 'आशुतोष' रूप में उनकी प्रतिष्ठा हुई; लोकमांगल्य के अनेक आख्यान भी उनके साथ जुड़ गये। यह विचारणीय है कि रुद्र का यह रूपान्तरण अकारण नहीं हुआ होगा, इसकी कोई पृष्ठभूमि अवश्य होगी। इसके पीछे जो सम्भावित कारण हो सकते हैं, उनका अनुसन्धान आवश्यक है।

वैदिक काल की धार्मिक चेतना मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियों और जीवन के स्थूल पक्ष से बँधी हुई है। प्रकृति में घटित होने वाली प्रत्येक घटना के पीछे उसे नियमित करने वाली एक चेतन शक्ति की अवधारणा है, जिससे मानव स्तुतियों के माध्यम से अपना सम्बन्ध जोड़ता है और उसे प्रसन्न कर अपने हित की कामना करता है। वह उनसे दीर्घ जीवन, आरोग्य, सम्पन्नता, पुत्रों और पशुओं की रक्षा और शत्रुओं के पराभव की प्रार्थना करता है। उसकी कामनाएँ भी स्थूल और सांसारिक हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये स्तुतियाँ बड़ी कल्पनापूर्ण हैं; प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को उनके भौतिक रूप और चरित्र के आधार पर जो देव-रूप प्रदान किये गये हैं, वे बड़े आकर्षक हैं और उनसे जो मानसिक बिम्ब बनता है, वह प्रकृति के उस पक्ष को मानो आँखों के आगे साकार कर देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि इन स्तुतियों में व्यष्टि चेतना और समष्टि चेतना के बीच सम्बन्ध की जो भूमिका प्रस्तुत होती है, वह धीरे-धीरे विकसित होती हुई भारतीय दर्शन की सर्वोच्च उपलब्धि-अद्वैत-में पर्यवसित होती है।

वैदिक संहिता काल के बाद ब्राह्मणकाल में इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये एक जटिल कर्मकाण्ड भी विकसित हो गया, जो कालान्तर में इतना प्रमुख हो गया कि साधन न रहकर साध्य बन गया। क्रियाओं के विस्तार में मानव-चेतना और देव-चेतना की आत्मीयता कहीं खो गई और धर्म एक निष्प्राण व्यवस्था में बदल गया। भारतीय चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता यही रही कि जब कोई विचार या व्यवस्था अनुपयोगी और अप्रासंगिक होने लगी और व्यक्ति तथा समाज को उससे प्रेरणा और दिशानिर्देश मिलना बन्द हो गया, तो तत्काल उसका स्थान एक नये विचार ने ले लिया। आत्मसंशोधन की यह प्रवृत्ति ही भारतीय संस्कृति

के दीर्घ जीवन का रहस्य है। इस जटिल कर्मकाण्ड के विरोध में एक सौम्य किन्तु प्रभावशाली वैचारिक क्रान्ति घटित हुई। इसका सूत्रपात हुआ उपनिषदों से, जिनमें पहली बार 'आत्मज्ञान' और 'अमृतत्व' की धारणाएँ आविष्कृत हुईं। पहली बार 'ससीम' ने 'असीम' से अपनी अभिन्नता समझी; पहली बार मनुष्य ने '**जीवेम शरदः शतम्**' से आगे बढ़कर नित्य जीवन का रहस्य जाना; और पहली बार उसने अपने व्यक्तित्व के स्थूल पक्ष का अतिक्रमण कर अपनी चेतना के सर्वोच्च आयाम का साक्षात्कार किया। यह सब घटते ही मानो भारतीय संस्कृति का रूपान्तरण हो गया। दृष्टि बदल गई, प्रतिमान बदल गये, प्राथमिकताएँ बदल गईं और प्रतीक भी बदल गये। प्रकृति में झलकती खण्ड-खण्ड दिव्यता की उपासना नहीं रही, अब सर्वव्यापी, सर्वरूप, एक अखण्ड, अनन्त और अद्वितीय चेतना का अभिज्ञान हुआ, जो अपने प्रत्येक अंश और अभिव्यक्ति में पूर्ण है।

यहाँ से दिव्य जीवन की खोज प्रारम्भ हुई। हजारों साल की इस विकास-यात्रा के पश्चात् कुछ बातें भारत की 'नचिकेता' (जिज्ञासु) प्रतिभा को समझ में आईं। पहली बात यह कि **'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'** और दूसरी बात यह कि **'अपि सर्वं जीवितमल्पमेव'**। मनुष्य के पास कितनी ही धन-सम्पत्ति हो, सुख-सुविधा हो, आवश्यक नहीं कि उसे उससे तृप्ति और सन्तुष्टि मिले ही; उसका जीवन कितना भी लम्बा क्यों न हो, उसे तो छोटा ही लगता है और फिर एक सीमा के बाद उसे समाप्त तो होना ही है। सांसारिक भोग कुछ सुख तो देते हैं, पर वे भी 'श्वोभावा' हैं; कल रहेंगे या नहीं, यह भी निश्चित नहीं है। इन सत्यों के साक्षात्कार के बाद इस संस्कृति की ऊर्ध्वगामी चेतना ने जीवन के नये लक्ष्य निर्धारित किये; सीमित और सावधि से उसका मोह टूटा। प्रश्न उठा कि वह अनन्त जीवन, वह नित्य निरतिशय सुख, वह 'अमृतत्व' कैसे प्राप्त होगा? कैसे मुक्ति मिलेगी जन्म-मृत्यु की अहर्निश गतिमान थका देने वाली यात्रा से? एक तत्त्वद्रष्टा ऋषि ने उपाय बताया **'न प्रजया न बहुना धनेन, त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'** – न सन्तति से, न प्रभूत धन-सम्पत्ति से, अपितु कुछ मनीषियों ने त्याग से ही उस अमृतपद को प्राप्त किया है।

अब भारत की मनीषा ने धर्म की नई परिकल्पना की, 'त्यागपूर्वक भोग' की। ऋषि ने आदेश दिया **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्** (ईश. उप.१)।' इस त्यागपूर्वक भोग में संसार का निषेध नहीं है, किन्तु सांसारिकता का है। यह धर्म जीवन के रुपान्तरण का है, उसके उदात्तीकरण का है; वह धर्म जो जीवन के प्रत्येक पक्ष को इतना संस्कारित कर दे कि वह परमार्थ का साधन बन जाय। देह के प्रति अन्धी आसक्ति से आत्मबोध तक की इस कठिन आध्यात्मिक यात्रा में मार्गदर्शन के लिये कोई ध्रुवतारा चाहिये, कोई अवलम्ब, श्रद्धा का कोई केन्द्र चाहिये। इसलिये भारतीय संस्कृति ने अपनी देव-भावना में भी परिवर्तन किये। उसने ईश्वर के ऐसे रूपों की भावना की जो जीवन के सर्वोच्च मूल्यों के प्रतीक हों और सामान्य मनुष्य की ऊर्ध्वमुखी यात्रा में उसकी सहायता कर सकें। जो इतने आकर्षक हों कि मनुष्य के मन को बाँध सकें, इतने समर्थ हों कि अपनी 'कृपाकोर' से उसका उद्धार कर सकें और इतने करुणामय और भक्तवत्सल हों कि उसे उसके अपराधों के लिये क्षमा कर सकें; और इस दृष्टि से भगवान् शिव भारतीय चिन्तन की अद्भुत उपलब्धि हैं। भारतीय संस्कृति की आत्मसंशोधन की प्रवृत्ति ने वैदिक रुद्र को ही शिव की मंगलमयी मूर्ति में ढाल दिया है, दुर्द्धर्ष योद्धा को आत्मलीन योगी बना दिया है। वस्तुतः भारतीय चिन्तन में घटित हुई आध्यात्मिक क्रान्ति और उसके फलस्वरूप प्राप्त हुई सर्वसमावेशी दृष्टि ने ही पौराणिक शिव का साक्षात्कार किया है।

यों तो भारतीय प्रतिभा ने अपने सभी 'आराध्य' बड़े मनोयोगपूर्वक गढ़े हैं, किन्तु शिव की अवधारणा तो असाधारण है। भारतीय संस्कृति का सौन्दर्यबोध और आत्मबोध दोनो उनमें मूर्तिमान हैं। शिव की अन्य विशेषताओं पर विचार करने के पूर्व उनके व्यक्तित्व पर विचार करना उचित होगा, विशेष रूप से उन बिन्दुओं पर जो उन्हें उनके पूर्वरूप अर्थात् रुद्र रूप से जोड़ते हैं।

भगवान् शिव का रूप अत्यन्त मनोहारी है। उनके गौरवर्ण और दिव्य कान्ति से स्फटिक शंख, कुन्दपुष्प, कर्पूर और चन्द्रमा भी लज्जित हो जाते हैं। यहाँ अनायास ही स्मृति आती है रुद्र के बभ्रु लोहित और नील वर्ण की; ये विविध रंग शिव के स्वरूप में नहीं दिखाई पड़ते। वस्तुतः रुद्र का व्यक्तित्व एक प्राकृतिक रूपक है, झंझावात के समय ये सभी रंग आकाश में दिखाई पड़ते हैं। आँधी आने से पहले आकाश लालिमायुक्त या ताम्रवर्णी हो जाता है। आँधी आने पर जब सारा वातावरण धूलिमय हो जाता है, तो आकाश का रंग भूरा या मटमैला हो जाता

है; फिर वर्षा के काले मेघों से घिरा आकाश नील-श्यामल प्रतीत होता है। झंझावात का गर्जन रुद्र के रथ का रव है, तो चमकती विद्युत् रेखाएं उसके क्षिप्र बाण हैं। झंझावात के समाप्त होने के पश्चात् धुला-निखरा निरभ्र आकाश उज्ज्वल श्वेत वर्ण का हो जाता है, इसलिए रुद्र को श्वेत वर्ण का भी कहा गया है (ऋ २.३३.८)। शिव का व्यक्तित्व इस प्रकार परिवर्तनशील नहीं है। वे सदैव शुभ्र और शुद्ध हैं। प्रतीकात्मक दृष्टि से देखें तो श्वेत, लोहित या लाल तथा नीला या काला क्रमशः प्रकृति के सत्त्व रजस् और तमस् गुणों के रंग हैं; प्रकृति को 'लोहितशुक्लकृष्णा' कहा भी गया है –

'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।' (श्वेताश्वतरोपनिषद् ४/५)

शिव प्राकृतिक जगत् के अन्तर्गत नहीं हैं, वे तो प्रकृति के अधिष्ठाता हैं। शुद्धसत्त्व, अर्थात् जो सत्त्वगुण रजस् और तमस् से मिश्रित न हो, को भारतीय दर्शन में ईश्वर की उपाधि कहा गया है, जिसे ग्रहण कर वह सृष्टि की रचना इत्यादि करता है। शिव अपने साकार रूप में इस सत्त्वगुण को धारण करते हैं। सत्त्वगुण का कार्य है 'ज्ञान'। शिव सांसारिकता से परे शुद्ध ज्ञान या प्रज्ञा के स्तर पर स्थित हैं। वस्तुतः वे ज्ञानस्वरूप ही हैं। सन्त तुलसीदास ने उनकी वन्दना करते हुए कहा है – **'वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्**। ज्ञानस्वरूप होने के कारण शिव प्राणिमात्र के आदि गुरु हैं, इनकी कृपा के बिना योगी भी परमतत्त्व का दर्शन नहीं कर सकते –

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्।।

इस गुरुरूप में शिव 'दक्षिणामूर्ति' कहलाते हैं। 'दक्षिण' का अर्थ है सरल शान्त, कल्याणमय। इस कल्याणकारक रूप में वे अपनी शरण में आये हुए व्यक्ति को परमतत्त्व का उपदेश देकर जन्म-मरणरुपी महान् भय से उसकी रक्षा करते हैं। (द्रष्टव्य श्वेताश्वतर उप. ४.२१)

वैदिक रुद्र का एक विशेषण अवश्य शिव के साथ जुड़ा रहा, और वह है 'नीलग्रीवः' (वाज.१६.७); शिव की उपाधि है 'नीलकण्ठ' अर्थात् जिनका कण्ठ नीला है। शिव के साथ लोकमांगल्य के जो आख्यान जुड़े हैं, उनमें सबसे प्रमुख है हलाहल पान की घटना। समुद्र-मंथन के समय समुद्र के गर्भ से चौदह रत्न निकले, इनमें हलाहल विष भी था। उस भयंकर विष के प्रभाव से सारी सृष्टि संतप्त और विषाक्त होने लगी, देवता और असुर दोनों ही त्राहि-त्राहि कर उठे, तब परमकारुणिक शिव ने संसार की रक्षा करने के लिये उस विष का पान कर लिया। अपनी अद्भुत सामर्थ्य से उन्होंने उस विष को अपने कण्ठ में ही रोक लिया, किन्तु उसके प्रभाव से उनका कण्ठ नीला हो गया और वे नीलकण्ठ कहलाये। ऐसी अनूठी उनकी लोकवत्सलता है।

वैदिक रुद्र से शिव की कुछ स्वरूपगत समानताएं और भी हैं। रुद्र को चर्मवेष्टित कहा गया है, शिव भी चर्म धारण करते हैं। सामान्यतः वे व्याघ्रचर्म धारण करते हैं, किन्तु गजासुर के वध के पश्चात् उन्होंने हस्तिचर्म भी धारण किया है। यह उनके साकार रूप का विशेषण है। स्वरूपतः निराकार होने के कारण वे 'दिगम्बर' हैं, दिशाएं ही उनके वस्त्र हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से 'देहत्रय'– कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर से रहित होने के कारण वे अशरीरी और सर्वव्यापक तत्त्व हैं, अतः यदि उनके वस्त्रों की कल्पना करनी हो, तो वे दिशारूप अर्थात् आकाशरूप ही हो सकते हैं। रुद्र की भाँति शिव का स्थान भी उत्तर दिशा को माना गया है और वे भी रुद्र की भाँति पर्वत पर निवास करते हैं। कैलाश पर्वत के शिखर पर वे अपनी अर्द्धांगिनी आदिशक्ति महाप्रकृतिरूपा पार्वती के साथ विराजमान हैं। शिव की पत्नी के प्रसिद्ध नाम 'उमा' और 'पार्वती' वैदिक साहित्य में भी मिलते हैं। मैक्डॉनैल के अनुसार ये नाम तैत्तिरीय आरण्यक और केनोपनिषद् में आये हैं। एक अन्य नाम 'अम्बिका' का उल्लेख सबसे पहले वाजसनेयि संहिता में आया है, किन्तु यहाँ यह रुद्र की बहिन के लिये प्रयुक्त है (मैक्डॉनैल-वैदिक माइथॉलोजी पृ. १४१)। शिव के सन्दर्भ में रुद्र से जुड़े कुछ विशेषणों के अर्थ बदल गये हैं। ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के तैंतीसवें सूक्त में रुद्र के लिये अनेक बार 'वृषभ' शब्द का प्रयोग हुआ है, जहाँ इसका अर्थ 'कामनाओं' की वर्षा करने वाला है। यद्यपि शिव भी कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, किन्तु उनके लिये 'वृषभ' शब्द का प्रयोग नहीं होता। वृषभ शिव का वाहन है, जिसका नाम नन्दी है। नन्दी शिव के प्रमुख गणों या परिचारकों में से एक है। यह ज्ञातव्य है कि वृषभ को धर्म का प्रतीक माना जाता है, इस तरह वृषभ पर आसीन शिव धर्माचरण के द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य हैं, अथवा धर्म का सारभूत तत्त्व हैं। **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द के पदचिह्नों का अनुसरण करें

स्वामी सुहितानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के महासचिव स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने १८ जून, २०१४ को बेलूड़ मठ में आयोजित अखिल भारतीय स्वयंसेवक मार्गदर्शन शिविर में दिया था। इस उपयोगी व्याख्यान को पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित कर रहे हैं।)

पूज्य स्वामी प्रभानन्दजी एवं अन्य वरिष्ठ साधुओं को मेरा प्रणाम। सभी संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, स्वयंसेवकों एवं भक्तों को मेरा स्नेह एवं हार्दिक शुभेच्छाएँ !

स्वामी शिवमयानन्दजी ने अपने प्रात:कालीन सत्र के व्याख्यान में कहा कि वे मुझसे पूजनीय स्वामी प्रेमेशानन्दजी महाराज के बारे में कुछ सुनना चाहते हैं, जिनके साथ मेरा कुछ वर्षों के लिए घनिष्ठ सम्पर्क में रहा है। उनसे सम्बन्धित कुछ प्रसंगों को यहाँ उद्धृत करता हूँ।

बात उन दिनों की है, जब मैं रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने की सोच रहा था। श्रद्धेय महाराज ने मुझसे पूछा, 'तुम क्यों साधु होना चाहते हो?' मैंने स्वामी विवेकानन्द जी के बारे में थोड़ा पढ़ा था, इसलिए मैंने कहा, 'मैं साधु इसलिए बनना चाहता हूँ कि अपने पीछे मैं एक चिह्न छोड़ जाऊँ। स्वामीजी ने कहा है कि मनुष्य-जन्म लिया है तो अपने पीछे एक चिह्न छोड़ जाओ।' उन्होंने तुरन्त कड़े शब्दों में कहा, 'यदि तुम, मैं और सभी लोग इस तरह चिह्न छोड़ते जाएँ, तो पूरा संसार ही विकृत हो जाएगा। पूरी दीवाल ही खराब हो जाएगी।'' तो फिर क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा कि हमें केवल स्वामीजी के पदचिह्नों का अनुसरण करना होगा, और हमारे लिए यह आवश्यक नहीं कि हम एक नवीन चिह्न का निर्माण करें।

एक अन्य प्रसंग है। एक बार जब मैं उनके साथ अकेले था, उन्होंने एक आश्चर्यजनक बात कही, 'हम यहाँ चार लोग हैं।' मैंने कहा, 'चार कैसे? इस समय तो हम दो ही उपस्थित हैं।' तब वे बोले, 'नहीं, तुम सोच रहे हो कि हम दो लोग यहाँ हैं और मैं भी यही सोच रहा हूँ कि हम दो हैं। लौकिक दृष्टि से मैं और तुम हम दो होते हुए भी वस्तुत: हम चार हैं।'' यही संस्था का महत्त्व है। यहाँ लगभग २४०० स्वयंसेवक विद्यमान हैं। आप सभी यहाँ श्रीरामकृष्ण देव की छत्र-छाया में उपस्थित हैं। सचमुच इस सभा ने कितनी अद्भुत शक्ति उत्पन्न की है, यह समझना कठिन है। भविष्य में कभी इस ओर दृष्टि डालने पर कदाचित् हमें इस सभा का पूर्ण महत्त्व समझ में आ सकता है।

किसी दूसरे दिन एक कॉलेज के प्राचार्य प्रेमेश महाराज से मिलने आए। वे महाराज के चरण स्पर्श करना चाहते थे। उनके हाथ में पुस्तक थी, इसलिए उन्होंने पुस्तक फर्श पर रखी और महाराज को प्रणाम किया। उसके बाद महाराज ने उनको वह पुस्तक मस्तक पर रखने को कहा। ऐसा क्यों? क्योंकि उस पुस्तक का नाम था 'विवेकानन्द साहित्य।' प्रेमेश महाराज ने तब उनसे कहा, 'विवेकानन्द साहित्य' में स्वामीजी की वाणी है और वह ईशवाणी है। यह पुस्तक उतनी ही पवित्र है जितनी की भगवद्गीता। हमें कभी भी इस पुस्तक का निरादर नहीं करना चाहिए।

एक बार प्रेमेश महाराजजी ने मुझसे पूछा कि तोतापुरी और स्वामी विवेकानन्द में क्या अन्तर है? मैंने सोचा कि तोतापुरी जी महान हैं, क्योंकि उन्हें आत्म-साक्षात्कार हुआ था और उन्होंने निर्विकल्प-समाधि की अवस्था भी प्राप्त की थी। जब मैंने अपना अभिमत महाराज के सामने प्रकट किया, तो उन्होंने कहा, 'यद्यपि तोतापुरी जी एक प्रकार से अपने आप में पूर्ण थे, किन्तु स्वामीजी में उससे कुछ अधिक था। समाधि-प्राप्ति के अलावा स्वामीजी के पास श्रीरामकृष्ण को गुरु रूप में प्राप्त करने का एक सुन्दर और विलक्षण अवसर था। यह एक अतिरिक्त शक्ति नरेन्द्रनाथ को मिली थी। नरेन्द्रनाथ भी तैलंग स्वामी की तरह समाधि में लीन रहना चाहते थे। नरेन्द्रनाथ की भी तोतापुरी और तैलंग स्वामी की तरह समाधिस्थ रहने की योग्यता थी। किन्तु वे उनसे भी आगे गए। इसीलिए ठाकुर ने स्वामीजी की भर्त्सना करते हुए कहा था, 'मैंने तो सोचा था कि तू एक विशाल वट वृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया में अनेक लोग आकर आश्रय लेंगे।' ये प्रेमेश महाराज के कुछ संस्मरण थे, जिन्हें मैं आपके साथ कहना चाहता था।

अब मैं आज दिनभर हुई चर्चाओं को संक्षेप में कहता हूँ –

१. आज इस कार्यक्रम के कारण देशभर में व्याप्त हमारे स्वयंसेवक बेलूड़ मठ को अपना घर अनुभव करने लगे है और उनमें अपनत्व का विकास हुआ है।

२. भगवान श्रीरामकृष्ण बेलूड़ मठ का संचालन करते हैं। वे हम सबके संरक्षक हैं। श्रीमाँ सारदा यहाँ हम सबका कल्याण करने वाली हैं और स्वामी विवेकानन्द हमारे नैतिक आधार एवं प्रेरक-शक्ति हैं।

३. प्रत्येक स्वयंसेवक को किसी एक आश्रम से संलग्न होना होगा।

४. हम जिस आश्रम से जुड़े हुए हैं, उसके जो कोई भी अध्यक्ष हों, उन्हें हम अपना स्थानीय संरक्षक समझें।

५. हम सभी श्रीरामकृष्ण के एक विशाल परिवार के सदस्य हैं, इसलिए हमें कुछ समान संस्कृति का अनुसरण करना होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में 'जातिधर्म' और 'कुलधर्म, दो शब्द हमें देखने को मिलते हैं। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में हमारा जातिधर्म अथवा राष्ट्रीय धर्म है त्याग और सेवा। किन्तु हमारा कुलधर्म किसी स्थान-विशेष के रीति-रिवाजों से सम्बन्धित है।

आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ निर्देश देना चाहूँगा –

१. आश्रम प्रांगण में प्रवेश करने पर आप सबसे पहले ठाकुर को प्रणाम करें और उसके बाद आश्रमाध्यक्ष से मिलने का प्रयत्न करें। इसके बाद आप अपने कार्य सम्बन्धित अन्य किसी साधु या व्यक्ति से मिल सकते हैं।

२. आप विनम्र, आज्ञाकारी और दूसरों के सहायक हों।

३. कभी भी राजनीति में न पड़ें। इस सम्बन्ध में प्रेमेश महाराज सभी को इन तीन प्रकार की राजनीति से सावधान कराते थे, समाचार-पत्र राजनीति, भक्त राजनीति और आश्रम राजनीति। समाचार-पत्र सम्बन्धी राजनीति हम सभी जानते हैं, एक पार्टी अथवा दल का दूसरे से झगड़ा। यह हमारे लिए समय व्यर्थ गँवाने के समान है। एक भक्त का किसी दूसरे भक्त से सम्बन्ध आदि की चर्चा, यह भक्त राजनीति है। यह हमारे लिए घृणास्पद है। इन सबसे निकृष्ट है आश्रम राजनीति, जिसमें साधुओं के बारे में चर्चा और गप्प लगाते रहते हैं। यह आश्रम और आपके व्यक्तिगत आध्यात्मिक जीवन के लिए बहुत हानिकारक है।

४. आश्रम जाते समय आपकी वेश-भूषा भद्र हो और आश्रम, जहाँ साधुवृन्द रहते हैं, उसके अनुरूप हो।

५. आपकी सहधर्मिणी आपके परिवार में आपकी पत्नी हैं, किन्तु आश्रम में वे एक महिला हैं। आश्रम-प्रांगण में स्त्रीत्व की गरिमा, आदर्श और कीर्ति बनाए रखें।

६. आपके बच्चे हमारी भावी पीढ़ी हैं। वे और आपके परिवार के अन्य सदस्य भी क्रमशः आश्रम से जुड़ें।

७. यदि आप दीक्षित हैं, तो अपने घर के भोजन-कक्ष में श्रीमाँ सारदा का चित्र रखने का प्रयत्न करें।

८. प्रत्येक स्वयंसेवक अपने जीवन के इन चार पहलुओं की ओर ध्यान दे - (क) व्यक्तिगत (ख) पारिवारिक (ग) व्यावसायिक और (घ) पड़ोसी

९. उपरोक्त सभी विषयों और कुछ अन्य पहलुओं पर स्वयंसेवकों हेतु यदि कोई मार्गदर्शिका निकाली जाए तो अच्छा होगा। मैं स्वागत करता हूँ कि आप में से कुछ लोग सामने आकर यह कार्यभार लें। हम इसके लिए आवश्यक सहायता प्रदान करेंगे।

हमारे स्वयंसेवक भाग्यशाली हैं कि वे भगवान श्रीरामकृष्ण देव, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द के सान्निध्य में आ सके। आपको अपना जीवन धन्य बनाने का यह विलक्षण अवसर प्राप्त है। आज आपमें से कुछ लोगों के व्याख्यान सुनकर मैं सचमुच बहुत ही प्रभावित हुआ। मैंने कभी सोचा नहीं था कि हमारे पास ऐसे निष्ठावान और विचारक स्वयंसेवक हैं।

आप सबने स्वामी तत्त्वसारानन्द जी के भाषण से सुना कि किस तरह दक्षिण अफ्रीका के स्वयंसेवक एकजुट होकर आश्चर्यजनक कार्य कर रहे हैं। आप में से प्रत्येक के भीतर बहुत सी प्रतिभाएँ, क्षमताएँ और योग्यताएँ विद्यमान हैं। क्यों नहीं आप सब भी आगे आएँ और हमारी सहायता करें, जिससे हम अपना सेवाकार्य आगे बढ़ाएँ। आज रामकृष्ण संघ के साधुओं से बड़ी आशा रखी जा रही है। लोग चाहते हैं कि हम अपने सेवा-क्षेत्र का विस्तार करें। स्वामी विवेकानन्द के १५०वें जन्म-जयन्ती समारोह के सुदीर्घ चारवर्ष व्यापी कार्यक्रम और विशेषकर रथयात्रा आयोजन के कारण आम जनता में आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में स्वामीजी के विचारों की प्रासंगिकता का भाव जगा है। इसलिए लोग चाहते हैं कि हम देश के विभिन्न भागों तक पहुँच सकें। यहाँ हमें स्वयंसेवकों के सहायता की आवश्यकता है।

जब शशी महाराज जी (स्वामी रामकृष्णानन्द) ने मद्रास में अपने सेवाकार्य का प्रारम्भ किया, तब उनके पास कोई भी सहायक साधु नहीं था। उनके कार्यों में युवा-स्वयंसेवकों ने ही उनकी सहायता की थी। उनकी सहायता के फलस्वरूप ही महाराज ने विद्यालय, अनाथालय एवं अन्य सेवाकार्यों का मद्रास में शुभारम्भ किया। इसके अलावा, मुम्बई, मैसूर, बेंगलोर, रंगून एवं अन्य दूरवर्ती स्थानों तक उन्होंने अपने कार्य का विस्तार किया। इनमें से प्रत्येक स्थानों में उन्होंने भक्तों और स्वयंसेवकों का समूह तैयार किया, जिन्होंने कार्य को आगे बढ़ाया।

स्वयंसेवक के रूप में आप सबमें महान शक्ति और क्षमता है। आप सभी श्रीठाकुर, श्रीमाँ और स्वामीजी के अनुयाई हैं। स्मरण रहे कि आप उन स्वामीजी के पास आए हैं, जिन्होंने कहा था, 'मेरे पास आओ, मैं तुममें से प्रत्येक को बीस (व्यक्तियों के समान) बना दूँगा।' धन्यवाद।

OOO

होली का आध्यात्मिक महत्त्व

प्रो. बी. के. कुमावत, उज्जैन

विश्ववन्द्य कवि गोस्वामी तुलसीदासजी का सम्बन्ध वस्तुत: श्रीरामचरितमानस तक ही सीमित नहीं है। नि:संदेह उनके मानस में उनकी पावन भव्य मूर्ति का दर्शन होता है, किन्तु उनकी भक्ति-विभोर आत्मा 'विनयपत्रिका' पर अधिष्ठित है। यह कृति ज्ञानियों की सिद्धान्त-मंजूषा है, पण्डितों का पाण्डित्य-निकष है एवं भक्तों की मानस-तरंगिणी है।

गोसाईंजी ने यह पत्रिका कराल, कुटिल एवं क्रूर कलियुग द्वारा सताए जाने पर महाराजाधिराज श्रीराम के दरबार में पहुँचायी थी। उस समय वे समूची मानव-जाति के प्रतिनिधि स्वरूप बने थे। पत्रिका कुछ ऐसी प्रभावोत्पादिनी लिखी गई है कि उसे पढ़कर कोई कैसा भी कठोर हृदय क्यों न हो, एक बार तो द्रवित हो ही जायेगा। जीवन का दैन्य, असामर्थ्य, लघुत्व और स्वामी का पुरुषार्थ, सामर्थ्य एवं महत्त्व विलक्षण उद्‌गारों में अभिव्यक्त किया गया है। इस ग्रन्थ में अगाध पाण्डित्य, अतर्क्य अर्थ-गाम्भीर्य, अनुपम उक्ति-चमत्कार, ललित शब्द-सौष्ठव तथा अनन्य अनुराग-माधुर्य के दर्शन होते हैं। गोसाईजी की निर्मल आत्मा इसी शुभ दर्पण में दृष्टिगोचर होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – "भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा विनय-पत्रिका में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं। भक्ति में प्रेम के अतिरिक्त आलम्बन के महत्त्व और अपने दैन्य का अनुभव परम आवश्यक अंग है। तुलसी के हृदय से इन दोनों अनुभवों के ऐसे निर्मल शब्द-स्रोत निकले हैं, जिनमें अवगाहन करने से मन की मैल कटती है और अत्यन्त पवित्र प्रफुल्लता आती है।" भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी गोस्वामीजी की यह विनय पत्रिका हिन्दी-साहित्य का एक अनमोल रत्न है। गोस्वामीजी परम भक्त थे। जो कुछ उन्होंने कहा, वह सब उनका अनुभव-सिद्ध कथन है। विनय पत्रिका तो उनके सिद्धान्तों की सारस्वरूपा है । इसमें समस्त शास्त्रों, उपनिषदों, और सिद्धान्तों का निचोड़ मिलता है।

प्रस्तुत आलेख में विनय पत्रिका के उत्तरार्द्ध के पद क्रमांक २०३ में वर्णित फाल्गुन मास की पूर्णमासी पर हम विमर्श करेंगे। यह पद साहित्य, भक्ति एवं तत्त्वज्ञान की दृष्टि से बड़ा ही सुन्दर है। साधकों के लिये तो यह हृदय का हार ही है। क्रमश: इस पर चलता हुआ साधक पूर्ण सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है, इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देह नहीं है। फाल्गुन मास की पूर्णमासी अन्य महीनों की पूर्णमासी से कहीं अधिक आनन्दमयी समझी जाती है।

होली में दैहिक, भौतिक और दैविक इन तीनों तापों को जला देना चाहिये, फिर फाग खेलनी चाहिये, आनन्द मनाना चाहिये। (जब तक लेशमात्र भी सांसारिक दु:ख रहेगा, तब तक जीव निश्चिन्त होकर परमानन्द-प्राप्ति का महोत्सव नहीं मना सकता।) इस बात को प्रस्तुत पद में रेखांकित किया गया है। जो साधक अपने मन में परमानन्द-प्राप्ति की इच्छा करता है, उसे इस पद में दर्शाये गये पन्द्रह साधनों को क्रमश: अपनाना चाहिये। आइये, हम इन पन्द्रह साधनों पर चर्चा करते हैं —

श्री हरिगुरु-पदकमल भजहु मन तजि अभिमान।
जेहि सेवत पाइय हरि सुख-निधान भगवान।।

एकम – प्रथम प्रेमबिनु राम-मिलन अतिदूरि।
जद्यपि निकट हृदय निज रहे सकल भरपूरि।।

दुइज – द्वैत-मति छाँड़ि चरहि महि-मण्डल धीर।
बिगत मोह-माया मद हृदय बसत रघुबीर।।

तीज – त्रिगुन-पर परमपुरुष श्रीरमन मुकुन्द।
गुन-सुभाव त्यागेबिनु दुरलभ परमानन्द।।

चौथि – चारि परिहरहु बुद्धि-मन-चित अंहकार।
बिमल विचार परम पद निज सुख सहज उदार।।

पाँच – पाँच परस, रस, शब्द, गन्ध अरू रूप।
इन्ह कर कहा न कीजिए, बहुरिपरब भव-कूप।।

छठि – षड्‌वर्ग करिय जय जनकसुता-पति लागि।
रघुपति कृपा-वारि बिनु नहिं बुताइ लोभागि।।

सातैं – सप्त धातु-निर्मित तनु करिय बिचार।
तेहि तनु केर एक फल, कीजै पर उपकार।।

आठइँ – आठ प्रकृति पर निर्विकार श्रीराम।

केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिं बहुकाम ।।

नवमी – नव द्वार-पुर बसि जेहि न आप भल कीन्ह ।
ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारून दु:ख लीन्ह ।।

दसइँ - दसहु कर संजम जो न करिय जिय जानि ।
साधन बृथा होइँ सब मिलहिं न सारँग पानि ।।

एकादशी – एक मन बस कै सेवहु जाइ ।
सोइ ब्रत कर पल पावै आवागमन नसाइ ।।

द्वादसि – दान देहु अस अभय होइ त्रैलोक ।
परहित निरत सो पारन बहुरि न व्यापत सोक ।।

तेरसि - तीन अवस्था तजहु, भजहु भगवन्त ।
मन-क्रम-वचन अगोचर, व्यापक व्याप्य अनन्त ।

चौदसि – चौदह भुवन अचर-चर-रूप गोपाल ।
भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ।।

पूनो – प्रेम भगति-रस हरिरस जानहिं दास ।
सम, सीतल, गत-मान, ग्यानरत विषय-उदास ।।

त्रिविधसूल होलिय जरै, खेलिय अब फागु ।
जो जिय चहसि परम सुख तौ यहि मारग लागु ।।
स्रुति-पुरान-बुध-सम्मत चाँचरि चरित मुरारि ।
करि विचार भव तरिय परयि न कबहु जमधारि ।।
संसय-समन, दमन-दु:ख सुख निधान हरि एक ।
साधु-कृपा बिनु मिलहिं न, करिय उपाय अनेक ।।
भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन ।
तुलसीदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ।।

इस पद में, सर्वप्रथम गोस्वामी तुलसीदासजी इस बात पर बल देते हैं कि हे मन! तू भगवत्स्वरूप श्रीगुरु के चरणारविन्दों का भजन कर। उनकी सेवा करने से आनन्द घन श्रीहरि का साक्षात्कार हो जाता है। श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में वन्दना करते समय गोस्वामीजी कहते हैं कि 'मैं उन गुरु महाराज के चरण-कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा के समुद्र और नर के रूप में श्रीहरि हैं और जिनके वचन महामोहरूपी घने अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य-किरणों के समूह हैं –

बदउँ गुरु पदकंज कृपासिन्धु नर रूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर ।।
(रा.च.मा. १/१/५)

उत्तरकाण्ड में तो वे डंके की चोट कहते हैं कि गुरु के बिना कोई भवसागर पार नहीं होता, चाहे वह ब्रह्माजी अथवा शंकरजी के समान ही क्यों न हो।

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई ।
जौं बिरंचि संकर सम होई ।। (रा.च.मा. ७/९३क/३)

फाल्गुन मास की पूर्णमासी की प्रत्येक तिथि को क्रमश: किन-किन साधनों की साधना करनी चाहिए, इसका वर्णन गोसाईंजी यहाँ कर रहे हैं।

प्रतिपदा – जैसे प्रतिपदा पक्ष में सबसे प्रथम दिन है, उसी प्रकार सर्वसाधनों में प्रथम साधन प्रेम है। बिना प्रेम के श्रीरघुनाथ जी का मिलना बहुत दूर की बात है। अर्थात् भगवत्प्राप्ति का मुख्य साधन प्रेम ही है। यद्यपि सर्वव्यापी श्रीरामचन्द्रजी सबके हृदय में पूर्णरूपेण निवास करते हैं, तो भी बिना प्रेम के उनका साक्षात्कार सम्भव नहीं है। दोहावली में गोस्वामीजी ने कहा है कि नियमों से प्रेम का महत्व अधिक है –

बड़ी प्रतीति गठिबंध तें बड़ो जोग तें छेम ।
बड़ो सुसेवक साइँ तें बड़ों नेम ते प्रेम ।।(दोहावली ६०)

द्वितीया – द्वितीया के लिये दूसरा साधन यह है कि द्वैतबुद्धि (अपने-पराये का भेद) छोड़कर (समदृष्टि से) धैर्य धारण कर समस्त भू-मण्डल में निश्चिन्त होकर विचरण करना चाहिये। अज्ञान, माया तथा अहंकार से रहित हृदय में ही सदैव श्रीरघुनाथजी निवास करते हैं। जब तक हृदय में माया-मोह का निवास है, तब तक श्रीहरि का ध्यान करना सम्भव नहीं है। काम और राम दोनों एक साथ नहीं रह सकते। काम-लिप्सा जब तक रहेगी, तब तक रामभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती –

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम ।
एक संग निबसत नहीं, 'तुलसी' छाया धाम ।।

तृतीया – तृतीया के समान तीसरा उपाय यह है कि पुरुषोत्तम, लक्ष्मीकान्त मुकुन्द भगवान मायात्मक त्रिगुणों (सत्व, रज और तम) से परे हैं। अत: इस त्रिगुणात्मक प्रकृति का त्याग कर देना चाहिए। ऐसा किये बिना दुर्लभ परमानन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीमद्भगवद्गीता के दूसरे अध्याय में योगेश्वर श्रीकृष्ण महात्मा अर्जुन को यही उपदेश देते हैं – 'निस्त्रैगुण्योभव' अर्थात् सत्त्व, रज और तम का परित्याग करो। तुम निस्त्रैगुण्य हो जाओ। इससे तुम निर्द्वन्द्व हो जाओगे, परमात्मा में स्थित हो जाओगे,

योग-क्षेम को न चाहने वाले हो जाओगे तथा स्वाधीन अन्त:करण वाले हो जाओगे।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।

निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।। (गीता २/४५)

चतुर्थी – चतुर्थी के समान भगवत्प्राप्ति का चौथा साधन यह है कि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इनका जो अन्त:करण चतुष्टय है, उसे त्याग देना चाहिए अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को अपने अधीन कर लेना चाहिए। इसका परिणाम यह होगा कि शुद्ध विवेक का उदय हो जायेगा।

पंचमी – पंचमी के समान पाँचवां साधन यह बताया गया है कि पाँचों इन्द्रियों के विषयों – शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और के कहने में, इनके अधीन होकर कभी नहीं चलना चाहिए, क्योंकि इनमें फँसकर जीव को संसार रूपी अन्ध कूप में (जन्म-मृत्यु के चक्कर में) पड़ना पड़ेगा। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में कहा गया है कि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है –

''वशेहि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता'' । (२/६१)

षष्ठी – षष्ठी के समान छठा उपाय यह है कि श्रीजानकीवल्लभ रघुनाथजी की प्राप्ति के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर – इन छहों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी होगी। लोभ रूपी अग्नि तो बिना भगवत्कृपा रूपी जल के शान्त नहीं हो सकती। लोभ सबसे अधिक प्रबल माना गया है। इसका नाश श्रीहरि-कृपा से ही सम्भव है। श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में काम, क्रोध और लोभ को तो अत्यन्त प्रबल खल की संज्ञा दी गई है जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों, ज्ञानियों और साधकों के मन में क्षण भर में क्षोभ उत्पन्न कर सकते हैं –

तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।

मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महँ छोभ ।।

(रामचरितमानस ३/६/३६ क)

श्रीमद्भगवद्गीता में काम, क्रोध और लोभ को नरक के द्वार के रूप में निरूपित किया गया है जो कि आत्मा का नाश करने वाले अर्थात् उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं। अतएव इन तीनों को त्याग देना चाहिए –

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।

कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।। (गीता १६.२१)

सप्तमी – सप्तमी के समान भगवत्प्राप्ति का सातवाँ उपाय यह है कि इन सात धातुओं – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र से बने हुए इस अपवित्र क्षणभंगुर शरीर पर विचार करना चाहिए कि यह शरीर नाशवान है। अत: इसे केवल भोग-विलासों में लिप्त नहीं होना चाहिए। इस शरीर का केवल यही एक फल है कि इससे सतत् परोपकार किया जाये। परोपकार में ही नर-शरीर की सार्थकता है। एक भक्त ने महर्षि वेदव्यास से कहा कि आपने अठारह पुराणों की रचना की है, उनका सार मुझे संक्षेप में बताइये, क्योंकि मैं इन सब पुराणों का विस्तृत अध्ययन नहीं कर सकता, तो महर्षि वेदव्यास ने कहा कि अठारह पुराणों का सार यह है कि परोपकार के समान कोई पुण्य नहीं है और पर-पीड़ा के समान कोई पाप नहीं है –

अष्टादशः पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम् ।

परोपकारः पुण्याय पापाय परपीड़नम् ।।

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में परमभक्त जटायु से श्रीरघुनाथ जी ने यही कहा है कि जिनके मन में परोपकार बसता है उनके लिए इस जगत में कुछ दुर्लभ नहीं है अर्थात् सब कुछ सुलभ है –

जल भरि नयन कहहिं रघुराई ।

तात कर्म जिन तें गतिपाई ।।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं ।

तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ।।

(रा.च.मा. ३/१३)

अष्टमी – अष्टमी के समान आठवाँ उपाय यह है कि रामचन्द्र अष्टप्रकृति (पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) से परे शुद्ध स्वरूप हैं। जब तक हृदय से अनेक प्रकार की कामनाएँ दूर नहीं होतीं, तब तक उनका साक्षात्कार संभव नहीं है। शुद्ध आनन्दघन भगवान का निवास निष्काम निर्विकार पवित्र हृदय में ही होता है। हमें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि सम्पूर्ण जगत परमात्मा की परा तथा अपरा प्रकृति से उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण जगत का मूल कारण परमात्मा ही है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।

अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।

अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।

(गीता ७/४,५,६)

नवमी – नवमी के समान नवाँ साधन यह है कि जिसने इस नव द्वारवाली नगरी अर्थात् नौ छेद वाले शरीर में रहकर अपनी आत्मा का श्रेयस् नहीं साधा वह नाना प्रकार की योनियों में भटकता रहेगा। अर्थात् विषयों में फँसकर वह कभी जन्म-मरण से छुटकारा न पा सकेगा और सदा आत्मघाती ही कहा जायेगा। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि जिस व्यक्ति के वश में अन्तःकरण है, वह न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नवद्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनन्दपूर्वक सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखंवशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।। (गीता ५/१३)

श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कहा गया है कि परमात्मा कभी करुणा करके मनुष्य शरीर दे देते हैं, क्योंकि वे बिना कारण ही स्नेह करनेवाले हैं। नर-शरीर भवसागर के लिए बेड़ा है, भगवत-कृपा सम्मुख पवन है, सद्गुरु दृढ़नाव के कर्णधार हैं। यह सब दुर्लभ सामग्री सुगमता से उपलब्ध हो गई है। ऐसी स्थिति में जो मनुष्य भवसागर न तरे वह कृतघ्न है, मन्दमति है और आत्महत्या करने वालों की गति को पहुँचता है –

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही।।
नरतनु भवबारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो ।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करिपावा ।।
जो न तरे भवसागर नर समाज अस पाइ ।
सो कृतनिन्दक मन्दमति आत्माहन गति जाइ ।।

(रा.च.मा. ७/४४)

दशमी – दशमी के समान दसवाँ साधन संयम है। जिसने दसों इन्द्रियों का संयम करना नहीं जाना, इन्द्रियों को वश में नहीं किया, उसके सारे साधन निष्फल हो जाते हैं। उस असंयमी व्यक्ति को धनुर्धारी श्रीराम का दर्शन नहीं हो सकता। इन्द्रिय-लोलुप को भगवत-रसास्वादन स्वप्न के समान है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से सब प्रकार विरत होकर उसके वश में हैं, उसी की बुद्धि स्थिर होती है। स्थिर बुद्धिवाला साधक ही परमात्मा के साक्षात्कार का अधिकारी होता है।

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ।। (गीता २/६८)

एकादशी – एकादशी के समान ग्यारवाँ साधन यह है कि एकदत्त चित्त करके अर्थात् सब ओर से हटाकर चित्त एक लक्ष्य पर केन्द्रित कर भगवत्सेवा करनी चाहिये। इसी आराधना से व्रत का फल यह मिलता है कि साधक जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाता है। भगवान को सेवक प्रिय लगता है। किष्किन्धाकाण्ड में अपने अनन्य सेवक श्री हनुमानजी को श्रीरघुनाथजी कहते हैं, सब कोई मुझे समदर्शी कहते हैं, पर मुझको सेवक प्रिय है, क्योंकि वह अनन्यगति होता है अर्थात् उसको मैं ही प्रिय हूँ, दूसरा नहीं। वही अनन्य भक्त है, जिसकी अचल बुद्धि हो कि जड़-चेतन सारा जगत स्वामी, भगवान का रूप है और मैं सेवक हूँ।

समदरसी मोहि कह सब कोऊ ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ ।।
सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत ।।

(रा.च.मा. ४/३)

द्वादशी – द्वादशी के समान बारहवाँ साधन है व्रत के उपरान्त दान देना, जिससे तीनों लोकों में अभय प्राप्त हो। द्वादशी रूपी बारहवें साधन का पारण यह है कि साधक सदा परोपकार, दान में लगा रहे, फिर उसे शोक नहीं होता। पृथ्वी पर दान के समान कोई वस्तु, कोई निधि नहीं है।

नास्ति भूमौ दान समं नास्ति दानसमौ निधिः ।

(महा. अनुशासन पर्व)

श्रीमद्भगवद्गीता के १८ वें अध्याय में कहा गया है कि यज्ञ, दान और तप-ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करते हैं अतः आवश्यक कर्तव्य समझकर करना चाहिये।

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।। (गीता १८/५)

इस साधन में अभय होने की बात कही गई है। ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है कि सबसे बड़ा दान अभयदान होता है।

न गोप्रदानं न महीप्रदानं न चान्नदानं न सुवर्णदानम् ।
यथा वन्दतीह बुधाः प्रधानं सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ।।

अर्थात् बुद्धिमान लोग समस्त दानों में अभयदान को जितना प्रधान बतलाते हैं, उतना महत्त्वपूर्ण गोदान, पृथ्वीदान, अन्नदान या स्वर्णदान को नहीं बतलाते। भगवान श्रीराम ने विभीषण को अभयदान दिया था, जो अपने भ्राता रावण की प्रताड़ना से भयभीत होकर प्रभु श्रीराम की शरण में आया था। प्रभु कहते हैं –

जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहऊँ ताहि प्रान की नाईं।।

(रा.च.मा. ५/४४)

भगवान श्रीरामजी यह व्रत लेते हैं –

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् वतं मम।।

(वा.रा. ६/१८/३३१३)

त्रयोदशी – त्रयोदशी के समान तेरहवाँ साधन यह है कि जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं को त्यागकर सदा एक रस निर्बाध रूप से भगवत् भजन करना चाहिये। नारायण मन, कर्म और वाणी से परे हैं, सर्वव्यापी हैं, स्वयं व्याप्य है (अर्थात् दृश्य रूप भी हैं) और असीम अनन्त हैं। अत: उनका भजन इन अवस्थाओं को त्याग देने पर ही सम्भव है, क्योंकि जब तक जीव अवस्था-भेद में रहेगा, तब तक वह अनन्त, सर्वव्यापी परमात्मा का पूर्णरूपेण चिन्तन नहीं कर सकता। लंका-विजय के बाद जब भगवान श्रीरामजी अयोध्यापुरी आये, तो भाटों के वेष में वेदों ने भगवान की स्तुति करते हुए यही कहा – हे प्रभो ! हम यह वर माँगते हैं कि मन, कर्म और वाणी के विकारों को छोड़कर हम आपके चरणों में प्रेम करें।

करूनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह वर माँगहीं।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं।।

(रा.च.मा. ७/१३)

चतुर्दशी – चतुर्दशी के समान गोपाल (इन्द्रियों के नियन्ता) भगवान चौदह लोकों में रम रहे हैं। जड़ और चेतन सब कुछ भगवान का ही रूप है। जब तक जीव की भेद-बुद्धि दूर नहीं होती, 'मेरे-तेरे' का भेद समाप्त नहीं होता, तब तक श्रीरघुनाथजी संसार रूपी जाल को छिन्न-भिन्न नहीं करते, जन्म-मरण से मुक्त नहीं करते।

श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड में 'श्रीरामगीता' प्रसंग में भगवान श्रीरामजी ने बन्धुवर श्री लक्ष्मणजी से कहा है कि 'मैं और मेरा', 'तू और तेरा' यही माया है जिसने समस्त जीवों को वश में कर लिया है। जो माया को, ईश्वर को, अपने को न जान सके, उसे जीव कहिये। बन्धन तथा मोक्ष को देने वाले सबसे परे और माया के प्रेरक ईश्वर हैं। जब तक इसका बोध नहीं होता तब तक जीव इस संसार से मुक्त नहीं हो सकता –

मैं अरू मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया।।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।।
माया ईश न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।
बंध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव।। (रा.च.मा. ३/१५)

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि यह मेरी त्रिगुणमयी माया अद्भुत है, दुस्तर है। किन्तु जो मुझे ही सदा भजते हैं, वे इस संसार से तर जाते हैं।

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। (गीता ७/१४)

पूर्णमासी – पूर्णमासी के समान पन्द्रहवाँ साधन जो सर्वोत्कृष्ट, पूर्ण साधन है, वह यह है कि शान्त, शीतल, अभिमान-रहित, ज्ञानमय और सभी विषयों से विरक्त हो जाना चाहिए, तभी परमानन्द का अमृत प्राप्त होगा। इस महारस को केवल भगवान के सेवक ही जानते हैं, विषयीजन इसे नहीं समझ सकते।

इस प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी के अनुसार वेदों, पुराणों और पण्डितों का यही मत है कि भगवान की लीलाओं का कीर्तन ही होली के अवसर पर गाने के गीत हैं। उपर्युक्त साधनों पर विचार करके संसार-सागर पार किया जाना चाहिये और फिर कभी भूलकर भी यम सेना के फन्दे में अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में नहीं फँसना चाहिये। अविद्यानाशक, दु:खहर्ता और आनन्दराशि केवल नारायण ही हैं। भले ही अनेक उपाय किये जायँ, पर वे सन्तों के अनुग्रह के बिना प्राप्त नहीं होते, अर्थात् सन्त-कृपा सर्वसाधनों में प्रधान है। संसार-सागर से पार जाने के लिये सन्तों के पवित्र चरण ही नौका है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस नौका पर चढ़कर सन्तों के चरणों की सेवा करके दु:खों का नाश करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी बिना ही प्रयास प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिये कहा गया है –

मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगनाथ।
साधु-चरन सेवन बिना, कुछ न आवै हाथ।।

○○○

श्रीरामकृष्ण एवं उनके गृहस्थ शिष्यों के जीवन में पवित्रता

सुखदराम पाण्डेय

संयोजक, उत्तर प्रदेश रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव प्रचार परिषद

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव की भौतिक उपस्थिति में जो लोग उनके सम्पर्क में आये, उनमें से अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी सेवाओं से सम्बन्धित थे। शिक्षा, साहित्य, स्वास्थ्य, प्रशासन, अभिनय आदि अनेक क्षेत्रों से आये ये लोग अपने जीवन एवं कार्यों द्वारा जो उदाहरण हमारे सामने रख गये हैं, वे वर्तमान एवं आगामी पीढ़ियों के लिये मील के पत्थर हैं। पत्थर बोलते तो नहीं हैं, पर मौन रहकर भी ये हमें हमारी मंजिल का पता बता देते हैं। श्रीरामकृष्ण देव के आगमन से भारत के सांस्कृतिक जीवन में जो क्रान्ति उपस्थित हुई, उसके अग्रदूत ये मनीषीगण बने। सर्वश्री महेन्द्रनाथ गुप्त, गिरीशचन्द्र घोष, अधरलाल सेन, अक्षयकुमार सेन, बंकिमचन्द्र चटर्जी, डॉ. रामचन्द्र दत्त, डॉ. महेन्द्रलाल सरकार, पूर्णचन्द्र घोष, कालीपद घोष, उपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, नवगोपाल घोष तथा दुर्गाचरण नाग आदि ऐसे नाम हैं, जो दुनिया की नजरों से ओझल रहकर भी ऐसे अद्‌भुत कार्य कर गये हैं, जिनकी तुलना में सुप्रसिद्ध महापुरुषों की कथायें भी दूर से आती प्रतिध्वनि-सी प्रतीत होती हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्तिगत कीर्ति को 'शूकरी विष्ठा' कहा है। पद, मान, यश, सम्पत्ति, राजपद आदि के होते हुए भी यदि हमने स्वत्व को नहीं पहचाना, तो हमारे सारे जीवन की उपलब्धि कल्पना की कहानी से भिन्न नहीं है। श्रीरामकृष्ण देव के गृहस्थ शिष्यों के जीवन-आलोक में हम पाते हैं कि कल्पनाओं में जीना और सत्य में जीना दो भिन्न वस्तुएँ हैं। श्रीरामकृष्ण ने हमें सत्य-जीवन की सीख दी है। सत्य से भिन्न जो कुछ भी है, वह कल्पना है, सत्य का आभास मात्र है। सत्य सदैव अपरिवर्तित है, जबकि जगत निरन्तर परिवर्तनशील है। कबीर दास जी कहते हैं –

का माँगौं कछु थिर न रहाई।
देखत नैन चला जग जाई।।

कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है, प्रत्येक वस्तु संचरणशील है। अत: इसका सत्य होना सम्भव नहीं है। प्रश्न उठता है, सत्य क्या है? श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ईश्वर ही सत्य है, ईश्वर ही वस्तु है। अत: वस्तुगत जगत ईश्वर से भिन्न नहीं है। जगत ईश्वर का ही रूप है। कुण्डली मारकर बैठा हुआ साँप और चलने वाला साँप, दोनों साँप ही हैं। वाष्पित जल, तरल जल, संघनित जल तीनों वस्तुत: जल ही हैं, किन्तु तापक्रम के अनुसार ये तीन भिन्न-भिन्न अवस्थाओं – ठोस, तरल एवं गैस के द्योतक हैं।

जिसका अस्तित्व है, वह सदा एक है, सत्य है, यद्यपि आम धारणा ईश्वर को सत्य और संसार को असत्य मानने की है। किन्तु श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं कि ईश्वर-साक्षात्कार के बाद यह संसार सत्य है, क्योंकि साक्षात्कारी पुरुष ईश्वर के अलावा कुछ भी नहीं देखता। संसार को भी सत्य कहा है। चूँकि संसार ईश्वर का ही रूप है, अत: यह सत्य से भिन्न हो नही सकता है।

श्रीरामकृष्ण देव तो ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ देख भी नहीं सकते थे। अत: दैनिक सांसारिक जीवन में भी वे समाधि का सुख पाते थे। उनके लिये जैसे ईश्वर आनन्दस्वरूप है, वैसे ही संसार भी 'आनन्द की कुटिया' है। अत: घर, कार्यालय, फैक्ट्री, थियेटर आदि सांसारिक संस्थानों में रहता हुआ आदमी भी परम सुख के साए से वंचित नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने हमें कई ऐसे व्यावहारिक सुझाव दिये हैं, जिन्हें अपनाकर हम अपने वर्तमान को अपना संगी बना सकते हैं। प्राय: हम अपने वर्तमान से असन्तुष्ट होते हैं। पाश्चात्य विद्वान शैली (Shelley) ने कहा है –

"We look before and after, And pine for what is not."

हम लोग भूत और भविष्य की ओर देखते हैं और जो नहीं है, उसके लिये लालायित रहते हैं। हम भविष्य की कल्पना में जीते हैं। किन्तु श्रीरामकृष्ण की राह पर जो लोग चले हैं, उनका जीवन देखकर हम भी अपने जीवन को सुन्दर बना सकते हैं –

"Lives of great men all remind us,
We can make our life sublime,
And departing leave behind us,
Footprints on the sands of time."

समय की रेत पर जिनके पदचिह्न छूट गये हैं, उनके जीवन को श्रीरामकृष्ण के महावाक्यों के परिप्रेक्ष्य में रखकर हमें सार्वजनिक जीवन में अपनी भूमिका स्थिर करने पर विचार करना है। वे विचार निम्नलिखित हैं –

१. एक हाथ में भगवान, दूसरे में संसार : श्रीरामकृष्ण का कथन है कि एक हाथ से संसार का कार्य करो, दूसरे हाथ

से भगवान का और जब संसार का काम कर चुको, तब दोनों हाथों से भगवान के चरणों को थाम लो। इस कथन के ज्वलन्त उदाहरण हैं श्री महेन्द्रनाथ गुप्त। श्रीरामकृष्ण के गृहस्थ शिष्य श्री गुप्त संसार की ज्वाला में जलते-भुनते 'आत्महत्या' करने की मानसिक अवस्था लेकर दक्षिणेश्वर आये थे। यहाँ श्री रामकृष्णदेव के पावन सान्निध्य में आकर उन्होंने ऐसा अनुभव किया मानो, तप्त धरती पर अमृत की फुहार पड़ गयी, मानों एक मरता हुआ वंश जीवन्त हो उठा। उन्हें लगा कि अब उन्हें अपना सारा जीवन एक संन्यासी के रूप में भगवान के कार्य में लगा देना चाहिये। उनका विचार जानकर श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें उपदेश दिया कि उन्हें संसार त्यागने की आवश्यकता नहीं है। घर पर रहकर संसार का काम करते हुए ईश्वर का नाम गुणगान करना ही उनका अभीष्ट है। तदनुसार श्री गुप्त एक कॉलेज में अंग्रेजी के प्राध्यापक और कालान्तर में प्राचार्य के रूप में कार्य करते हुए साधु-संग एवं ईश्वर के मनन-चिन्तन में निमग्न रहे। बाद में सांसारिक दायित्वों से निवृत्त होकर उन्होंने अपना सारा समय और जीवन ईश्वर के कार्य के लिये समर्पित कर दिया। 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' के लेखक के रूप में उन्होंने समकालीन एवं आगामी पीढ़ियों को जो अमृत-घट सौंपा है, वह अनन्त काल तक अनगिनत लोगों को अमरता की राह पर ले जाता रहेगा।

२. शिव सेवा, जीव सेवा : श्रीरामकृष्ण देव ने कहा कि जीवों की सेवा ही शिव की सेवा है। भगवान शिव की नगरी काशी की यात्रा के दौरान स्वयं उन्होंने देवघर में स्थानीय नंगे-भूखे निवासियों को अपने रसद्दार श्री मथुरानाथ विश्वास के द्वारा अन्न-वस्त्र की व्यवस्था करायी थी। मथुर बाबू के पहले असमर्थता जताने पर श्रीरामकृष्ण ने स्पष्ट बोल दिया था कि वैसी स्थिति में वे काशी जाकर शिव-दर्शन करने के बजाय गरीब आदिवासियों के साथ देवघर में ही रहना पसन्द करेंगे।

जो लोग जीवन के विविध क्षेत्रों में कार्यरत हैं, उन्हें सेवा के उपर्युक्त उदाहरण को अपना आदर्श समझना चाहिये।

श्रीरामकृष्ण देव के एक अन्य भक्त श्री दुर्गाचरण के जीवन में भी ऐसी अनेक घटनायें हैं, जो हमें जीव-सेवा के मर्म को समझने में सहायक हैं। श्री नाग महाशय होम्योपैथी के डॉक्टर थे। एक बार वे एक रोगी को देखने उसके घर गये। रोगी की गम्भीर हालत को देखते हुए वे रातभर रोगी के पास ही रहकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहे। वे अपना घर, अपना भोजन, अपना विश्राम पूर्णतः भूल गये। इसी प्रकार एक बार एक धनी-मानी रोगी की गम्भीर बीमारी को ठीक कर देने के कारण रोगी के घरवालों ने उन्हें पुरस्कार के रूप में एक बड़ी धनराशि देने का प्रस्ताव रखा, किन्तु उन्होंने पुरस्कार राशि लेने से अस्वीकार कर दिया। दवा पर हुए व्यय के बीस रूपये मात्र से अधिक एक पैसा भी लेना उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

३. ईश्वरार्पित कर्म : संसार के दायित्वों का निर्वाह करते हुए यदि हम भगवान का आश्रय ग्रहण किये रहें, तो हमारे कार्य की गुणवत्ता में अनिवार्यतः अत्यधिक वृद्धि होगी। भगवान के प्रति समर्पण, उनका निरन्तर स्मरण एवं सुमिरन हमारे साधारण कार्यों को भी दैवी-कार्य में परिवर्तित कर देते हैं। श्री गिरीशचन्द्र घोष बंगला थियेटर के सुप्रसिद्ध कलाकार हो गये हैं। उन्हें नाट्य-सम्राट का दर्जा प्राप्त है। किन्तु मद्यपान करने एवं भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण वे अनेक गुणों के बावजूद अवगुणागार बनकर रह गये थे। ईश्वर के स्मरण-मनन के लिये किंचित मात्र समय न निकाल पाने की स्थिति में श्रीरामकृष्ण ने उन्हें 'बकलमा' देने को कहा, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। अर्थात् वे यह सोचकर सन्तुष्ट हुए कि स्वयं श्रीरामकृष्ण देव उनके लिये उपासना आदि कार्य किया करेंगे। किन्तु यह गिरीश के लिये बहुत मँहगा सौदा साबित हुआ। उनके अहंकार का स्थान धीरे-धीरे श्रीरामकृष्ण ने ले लिया और इस प्रकार वे श्रीरामकृष्ण देव के प्रति समर्पित हो गये। इसका फल यह हुआ कि वे क्रमशः अपनी दुष्प्रवृत्तियों पर विजय पाने में सफल रहे। उनके सांसारिक कार्यों में क्रमशः श्रीरामकृष्ण ही केन्द्र बनते चले गये और अन्त में उनका जीवन रामकृष्णमय हो गया। भले ही वे नाट्य-लेखन, नाट्य-निर्देशन या मंचन आदि कार्यों में संलग्न रहे, किन्तु उनके प्रत्येक कार्य श्रीरामकृष्णार्पित हो गए। इस प्रकार आसक्ति एवं अहंकार रहित उनका जीवन अनेकों के लिये प्रेरणा का स्रोत बन गया और आज भी वे हमारी अतिशय श्रद्धा के पात्र हैं।

४. मन-मुख की एकता : हम प्रायः अवसर विशेष, यथा स्वतंत्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस आदि पर अथवा आपसी वार्तालाप में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, बड़े पदाधिकारी के रूप में हम संविधान की शपथ लेते हैं अथवा संकल्प दुहराते हैं, किन्तु अपने व्यक्तिगत जीवन में इसके विपरीत

आचरण करते हैं। हम जानते हैं, पर मानते नहीं हैं। हमारी स्थिति महाभारत के दुर्योधन जैसी है, जो कहता है –

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः ।
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।।

अर्थात् मैं धर्म को जानता हूँ, किन्तु उस ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं अधर्म को भी जानता हूँ, किन्तु उससे मेरी निवृत्ति नहीं है।

उपर्युक्त मानसिक अवस्था में जीवन बिताने वाले हम लोगों को श्रीरामकृष्ण अपने मन और मुख को एक करने का उपदेश देते हैं। वे कहते हैं, सत्य कलियुग की तपस्या है। अत: मन, वचन एवं कर्म से हमें सत्य का आचरण करना चाहिये। स्वयं वे जब जिससे जो बात कहते थे, उसे उसी रूप में निभाते थे। एकबार वे किसी से अमुक दिन आने की बात कहकर भूल गये। लगभग आधी रात को उन्हें अपने वचन का स्मरण हुआ। वे रात में ही तत्काल उस आदमी के घर गये। किवाड़ बन्द थे। लोग सो रहे थे। उन्होंने किवाड़ खटखटाया। न खुलने पर किवाड़ को थोड़ा अन्दर धकेल कर घर के अन्दर अपना पाँव रखा और बोले, ये देखो मैं आ गया।

मन-मुख की एकता के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण श्रीरामकृष्ण देव के ही पिता श्री क्षुदिराम चट्टोपाध्यायजी हैं। एकबार गाँव के जमींदार ने अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये क्षुदिराम जी से कोर्ट में झूठी गवाही देने के लिए दबाव डाला। वे इसके लिये किसी भी तरह तैयार नहीं हुए। वे बोले, मैं मन में एक बात और मुख पर दूसरी बात नहीं रख सकता। इसके दण्ड स्वरूप जमींदार ने उन्हें उनकी जमीन-सम्पत्ति से बेदखल करके उन्हें गाँव से निकाल दिया। वे अपनी पत्नी-बच्चों को लेकर अपने पैतृक गाँव 'देरे' से बाहर चले आये, किन्तु उन्होंने झूठ बोलना स्वीकार नहीं किया। बाद में वे कामारपुकुर नामक गाँव में आकर बसे, जहाँ कालान्तर में श्रीरामकृष्ण का जन्म हुआ। उनकी इसी सत्यनिष्ठा ने उन्हें एक आदर्श मनुष्य बनाया और युगावतार के पिता होने का गौरव प्रदान किया।

सरकारी सेवाओं में प्रतिवर्ष वार्षिक गोपनीय प्रवृष्टि देते समय हमलोगों की सत्यनिष्ठा सत्यापित की जाती हैं। किन्तु हम अपने जीवन को झाँककर देखें कि क्या हम वस्तुत: सत्यनिष्ठ हैं? क्या हमारे मन, वाणी, एवं कर्म में कोई भेद नहीं है? यदि हमारे विचार, शब्द एवं कार्य सीधी रेखा में हैं, तो हम सरकारी सेवक होने के साथ मनुष्य होने के अधिकारी हैं। अन्यथा हममें परिष्कार की जरूरत है। हम जो हैं, वही हमें दिखना चाहिये, उसी के अनुरूप हमें कार्य करना चाहिये, अन्यथा हम पर कोई विश्वास नहीं करेगा और हमारे जैसे लोगों की अधिकता होने से समाज में भी विश्वास का संकट उत्पन्न होगा।

५. आर्थिक पारदर्शिता : श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि जनता के पैसे का सदुपयोग किया जाना चाहिये। गृहस्थ कितने कष्ट उठाकर दान देते हैं। उनके एक-एक पैसे का सही हिसाब रखना तथा उन्हें उसी उद्देश्य के लिये व्यय करना, जिसके लिये उन्होंने दान दिया है, हम सबका कर्तव्य है। सरकारी पैसे पर भी यही बात लागू होती है। सरकारी पैसा तो जनता का ही पैसा है। उनकी गाढ़ी-कमाई, खून-पसीने से ही इसकी उत्पत्ति हुई है। अत: टैक्स अथवा अन्य प्रकार से जनता का जो धन हमारे खजाने में आता है तथा खजाने से बजट के रूप में जो धन व्यय करने के लिये विभिन्न सरकारी विभागों को प्राप्त होता है, उसका उसी प्रयोजन के लिये तथा उसी प्रकार व्यय होना चाहिये, जैसा कि नियमों में निर्दिष्ट है। बाहर से यह सांसारिक कार्य लगता है, किन्तु वस्तुत: यह धार्मिक कृत्य है तथा हमारे आध्यात्मिक विकास में सहायक है।

हमारे व्यक्तित्व की प्रामाणिकता एवं निष्ठा हमारे वास्तविक स्वरूप पर निर्भर है। हम स्वरूपत: सत्य हैं। अत: सत्य से इतर आचरण करना अपनी वास्तविकता से अलग होना है, अपनी अस्मिता से स्खलित होना है। अपने बारे में भ्रान्त भौतिकवादी धारणा पालकर अपने सत्य स्वरूप को त्यागना कृतघ्नता है, जो हम स्वयं के साथ करते हैं। झूठ, फरेब आदि के द्वारा पैसा कमाकर हम किसी अन्य को नहीं, स्वयं को ही धोखा देते हैं। पैसा आदमी को नहीं बनाता। आदमी ही पैसा बनाता है। पैसा आदमी के लिये है। आदमी पैसे के लिये नहीं है। जो चेतन है, उसका जड़ पदार्थ के लिये परेशान होना अशोभनीय एवं असंगत है। प्रकृतिजन्य जड़ता आत्मा की चेतन शक्ति के लिए कभी चुनौती नहीं बन सकती। स्वामी विवेकानन्द के समकालीन डॉ. रामचन्द्र दत्त के जीवन में हम प्राकृतिक जड़ता पर आत्मिक चैतन्य की विजय का अनूठा उदाहरण ढूँढ सकते हैं। **(क्रमशः)**

साधक-जीवन कैसा हो? (३)

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(ईश्वरप्राप्ति के लिये जिज्ञासु साधना में प्रयत्नशील रहते हैं। किन्तु प्राय: वे उन चीजों की उपेक्षा कर जाते हैं, जिन छोटी-छोटी चीजों से साधक-जीवन ईश्वर की ओर अग्रसर होता है। एक साधक का जीवन कैसा होना चाहिये और उसे अपने जीवन में किन-किन चीजों का ध्यान रखना चाहिये, इस पर विभिन्न दृष्टिकोणों से इस व्याख्यान में चर्चा की गयी है। प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर द्वारा आयोजित आध्यात्मिक शिविर में मार्च, २०११ में दिया था। विवेक-ज्योति के पाठकों हेतु इसका टेप से अनुलिखन नागपुर की सुश्री चित्रा तायडे और कुमारी मिनल जोशी ने तथा सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

यहाँ आने के पहले एक विद्यार्थी आया था। उसने किसी विषय में पी.एच.डी. कर ली है। मैंने पूछा कि बेटा, अब क्या करना चाहते हो? वह पढ़ने में अच्छा था, तो कहीं-कहीं नौकरियाँ उसको मिल रही थीं। उसने कहा कि बाबा, विदेश जाने के लिए मैंने Washington University या किसी अन्य University में आवेदन दिया है। मेरे पास विदेशी यूनिवर्सिटी की चिट्ठी भी आ गयी है। उन लोगों ने मुझे बुलाया है। वह लड़का अपने पिता के साथ मेरे पास आया था। लड़के का तात्पर्य यह था कि मैं उसके पिता से कह दूँ कि अब इस लड़के को विदेश भेज दो। अभी तुम पैसा खर्च करो, बाद में यह बालक सब वापस कर देगा। वह भक्त के घर का बच्चा है। दीक्षा भी ली है। वह लड़का मेरे सामने ही जन्मा-पला। उस का बाप ही मेरे सामने छोटा था, तो उसकी तो बात ही क्या है। सम्भवत: वह लड़का २५-२६ वर्ष का होगा। माँ-बाप का एक ही बच्चा है। उसकी छोटी बहन है। उसके घर कोई अभाव नहीं है। उसने दूसरे विषय में भी इंजीनियरिंग की और अन्य ट्रेनिंग आदि लिया है। उसकी माँ कहती, बाबा इसको समझाइए। यह विदेश पढ़ने जाना चाहता है।

मैंने उस लड़के से पूछा – क्यों विदेश जाना चाहते हो? यहाँ भी अच्छी तरह तुमने पढ़ा है और जो विद्या तुमने पढ़ी है, उससे बड़ी अच्छी नौकरी तुम्हें यहाँ भी मिल रही है।

उसने कहा – वहाँ की डिग्री बहुत मूल्यवान है। उसे लेकर मैं भारत में शोध कर सकूँगा। उससे मुझे अच्छी नौकरी मिलेगी। अधिक पैसा कमा सकूँगा। यद्यपि बाद में उसे अच्छी नौकरी मिली भी और अब वह पैसा कमा रहा है। भौतिक दृष्टि से उसकी सोच ठीक है।

यहाँ मैं आप सब साधक-साधिकाओं से निवेदन करता हूँ कि आप अपनी बहिर्मुखी दृष्टि को बदलिये। यदि आपकी प्रबन्धनवृत्ति हो, तो कृपया मेरी बातों को कचड़े में फेंक दीजिये। आधुनिक प्रबन्धन से मेरा तात्पर्य है कि यदि किसी भी प्रकार की भौतिक उपलब्धि की आकांक्षा से आप यह चर्चा सुन रहे हों, तो आप कृपया उसे तत्काल कचरे में फेंक दीजिये, यह आपके किसी काम में नहीं आयेगी। क्योंकि मैनेजमेन्ट की दृष्टि से, भौतिक दृष्टि से वह लड़का बहुत अच्छा है। वह वहाँ जायेगा। बहुत अच्छा उसका नाम होगा। बहुत अच्छा पैसा मिलेगा। भगवान करें, उसको नोबल प्राइज मिल जाय। कुछ भी हो, तो भौतिक उपलब्धियों की दृष्टि से उसका वहाँ जाना बहुत उपयोगी है। भौतिक उपलब्धि का मोह ही ऐसा है, बहिर्मुखता का आकर्षण इतना तीव्र है कि वह हमको उस विषय में सोचने नहीं देता। खैर आप में से कोई ऐसा नहीं है, जो इतना भौतिकवादी हो।

उस बच्चे से मैंने कहा – हाँ, ठीक है। तू वहाँ जायेगा, तो तुझे पैसा अधिक मिलेगा और उस विद्या से तुझे लाभ होगा। अच्छा, अब यह बताओ कि जो विद्या तुम पढ़ने जा रहे हो, जो अनुसंधान तुम करोगे, क्या ऐसा करनेवाले तुम भारत में पहले व्यक्ति होगे? वहाँ इतने बड़े-बड़े लोग सब पढ़ रहे हैं, क्या तू उन सबके ऊपर हो जाएगा? उसने कहा – आप मेरा मजाक उड़ा रहे हैं बाबा ! मैंने कहा – नहीं बेटा ! मजाक नहीं उड़ा रहा हूँ। तुम मेरे नाती के समान हो।

मैंने कहा – कितने साल लगेंगे? तू माँ-बाप का अकेला लड़का है और तेरे पिता और माता भी कुछ अधिक उम्र के हैं। क्या ये लोग बूढ़े नहीं होंगे? उनको कोई देखने वाले की आवश्यकता नहीं होगी? बहिर्मुखी व्यक्ति यह कभी नहीं सोच सकता है। यह असम्भव है, परां पश्यति। जितने वृद्ध माता-पिता आज कष्ट पा रहे हैं, उनकी सन्तानों

ने उन्हें त्याग दिया। उनका भी कुछ दोष है, लेकिन यह केवल बहिर्मुखी वृत्ति के कारण हुआ। क्योंकि जब तक मैं उत्तम पुरुष में न सोचूँ कि मेरी माँ हैं मेरे पिता हैं, यह भाव न रखूँ, तो सब व्यर्थ है। माता-पिता है तो ठीक है, जितना पैसा लगेगा हम भेज देंगे। इसका अर्थ है कि हृदय में कोई अपनत्व नहीं है। बहिर्मुख वृत्ति, सार्थक जीवन की दृष्टि से, हमें कही नहीं पहुँचाती है। क्यों नहीं पहुँचाती है? क्योंकि हमारे हृदय का विकास और विस्तार नहीं हुआ है।

जीवन एक यात्रा है आप हम सब अन्तर्निरीक्षण करें कि हम कहाँ खड़े हैं। हम जहाँ खड़े हैं, जैसे हैं, हमें वहीं से आगे की यात्रा प्रारम्भ करनी पड़ेगी। किसी भी यात्रा के लिये कुछ आवश्यक मौलिक शर्तें हैं, जिसके बिना हम यात्रा प्रारम्भ नहीं कर सकते। कैसे? जैसे अभी मैं रामकृष्ण मठ, नागपुर में हूँ। अब मैं सोचता हूँ कि भाई मैं बर्डी में जाऊँ या सदर में जाऊँ, वहाँ कुछ काम है। सबसे पहले तो, मुझे यह मालूम होना चाहिये कि मैं कहाँ हूँ? क्योंकि मठ में हूँ और पहली बार मैं नागपुर आया हूँ। नगर से मेरा कोई परिचय नहीं है। तो केवल मठ में हूँ कहने से काम नहीं चलेगा। मठ में हूँ कहने पर लोग पूछेंगे – "महाराज आपका मठ कहाँ है? तब मैं आपको बताऊँगा कि हमारा रामकृष्ण मठ धन्तोली में है और मैं धन्तोली में हूँ। मैंने वहाँ का पता बताया, फोन किया और वहाँ पहुँच गया। किसी भी यात्रा के लिये यह पहली सीढ़ी है।

हम बहिर्मुखी व्यक्तित्व के कारण निरन्तर चल रहे हैं। क्या हम जीवन में कभी रुके हैं? नींद में भी हम नहीं रुकते हैं। यह संसार एक यात्रा है और हम चलते जा रहे हैं। हम संसार के चक्र में चलते जा रहे हैं – कालः क्रीडति गच्छति आयुः, तदपि न मुञ्चति आशावायुः – काल क्रीडा कर रहा है। आयु बीती जा रही रही है। चलते हुए हम कभी नहीं जान सकेंगे कि हम कहाँ खड़े हैं और हमें कहाँ जाना है?

एक साधक को वह जहाँ है, वहाँ थोड़ी देर के लिये विचारों में रुके, और देखे कि वह कहाँ है तथा कहाँ जाना चाहता है? यह देखने के बाद ही दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके लिये हमें पहले विचारों में परिर्वतन करना पड़ेगा। तब कही जीवन में परिवर्तन आयेगा और तब ठीक-ठीक साधना प्रारम्भ होगी।

दूसरी बात है कि हम सोचें कि हम क्यों चल रहे हैं? हम देखें कि हम कहाँ जा रहे हैं और हमारे आसपास क्या है? कोई रुकने की जगह है क्या? जब हम अपने आसपास रुककर देखते हैं, तो पी. एच. डी वाले बच्चे के समान रुकने की कोई जगह नहीं दिखती है।

पिछले वर्ष की बात है। एक मित्र ने अपने घर भिक्षा के लिए हम दो-तीन साधुओं को बुलाया। उसने एक नया बड़ा भवन बनवाया था। उसके पहले भी उसका एक बहुत अच्छा घर था। उसका एक जवान अच्छा लड़का था। उसकी दवा की दुकान थी। इसे ईश्वरीय दुर्घटना या जो भी आप कहें, जिस दिन हम भोजन करने गये, उसके पाँच दिन बाद, एक दिन रात में अचानक हृदय गति रुक जाने से उस लड़के की मृत्यु हो गयी। जो उसके साथ हुआ, हमारे साथ भी हो सकता है।

मैं आप को बताना चाहता हूँ कि उसने नया घर क्यों बनवाया? वह दवाई का व्यवसाय करता था। उसके साथ उसने जमीन खरीदने-बेचने का व्यवसाय भी करने लगा। उसकी पत्नी युवती थी। वह उसके पीछे लगी। आप दूसरों के लिये इतना घर बनवाते हैं, आप बिल्डर हैं, इतनी जमीन खरीदते-बेचते हैं, आप हमारे लिये भी एक घर बनवा दीजिये। वह पहले भी जिस घर में रहती थी, वह बहुत अच्छा घर था। किन्तु नहीं, हमको नया घर चाहिये। उसके कहने से, बेचारा इतना पीड़ित हुआ कि झख मार के उसे एक नया घर बनवाना पड़ा। एक दिन मैंने पूछा — क्यों रे, क्या हुआ? उसने कहा — बाबा, क्या बताऊँ ! आपकी बहू ने मेरी नींद हराम कर दी थी। इतना अच्छा घर है, फिर भी एक नया घर बनवाकर देने को कह रही है !

अब आप सोचकर देखें। मैंने तो केवल एक संकेत दिया है। जो कुछ सुविधा आपको उपलब्ध है, आपकी जितनी सामर्थ्य है, उससे अधिक सुविधा — धन-मान-पद-यश सब कुछ ईश्वर ने आपको दिया है, किन्तु क्या हम सन्तुष्ट हैं ? क्या हम विश्राम-स्थल में, परम दृष्टि में पहुँचे हैं? क्या मेरा मन यह नहीं कहता कि कुछ और पा लें? जिस दिन प्रभु की कृपा होगी और वैराग्य आयेगा, उस दिन साधना प्रारम्भ होगी। जिन उपलब्ध सुविधाओं में हम सन्तुष्ट नहीं हैं, उससे अधिक सुविधा उपलब्ध होने पर असन्तोष भी बढ़ जायेगा। **(क्रमशः)**

पूर्ण स्वाधीनता और स्त्रीत्व का आदर्श

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

आलासिंगा पेरुमल स्वामी विवेकानन्द के घनिष्ठ शिष्यों में से एक थे। वे एक निष्ठावान तमिल वैष्णव-ब्राह्मण थे। १८९६ तक स्वामीजी के साथ उनका चार वर्षों का परिचय हो चुका था। स्वामीजी की कार्य करने की अभिनव और सृजनात्मक शैली से वे काफी परिचित थे। किन्तु निम्नलिखित संवाद पढ़कर कदाचित् आलासिंगा आश्चर्यचकित हुए हों। स्वामीजी ने अपने पत्र में उन्हें लिखा था, 'मेरे नवीन संन्यासी शिष्यों में एक स्त्री भी है।' अमेरिका के समाचार पत्र 'न्यूयार्क हेरॉल्ड' में यह संवाद ६ जनवरी, १८९६ को छपा था और कहीं इस खबर ने लोगों के मन में हलचल पैदा कर दी हो, इसी आंशका से भरा उनका यह पत्र था। स्वामीजी आगे और भी लिखते हैं, 'वह (मेरी लुई, बाद में स्वामी अभयानन्द) एक मजदूर संघ की नेता है।' शायद पहले की अपेक्षा यह खबर इतनी चकित करने वाली न हो। स्वामीजी ने यदि यह लिखा होता कि अब समय आ गया है कि हम चन्द्रमा पर एक वेदान्त केन्द्र आरम्भ कर दें, तो यह संवाद भी उतना विस्मयकारी न होता जितना कि उन्होंने अपने उपरोक्त पत्र में लिखा है।

स्वामीजी किसी भी परिस्थिति को परिवर्तित करने के लिए तत्पर रहते थे, यदि सचमुच में इस तरह के परिवर्तन से मानवजाति के ज्ञान, स्वाधीनता और बल में अभिवृद्धि हो। वे मानव जाति के लिए सबसे प्रथम वस्तु – स्वाधीनता चाहते थे और जब वे उसमें किसी प्रकार का अभाव देखते, तो पूरे प्रयास से उसके परिशोधन में लग जाते। वे कहते, "विकास की पहली शर्त है – स्वाधीनता, जिसे तुम स्वाधीन नहीं करोगे, वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता।" स्वाधीनता ही स्वामीजी के लिए सर्वोच्च अभीष्ट वस्तु थी। आध्यात्मिक स्वाधीनता अर्थात् मुक्ति ही मनुष्य जीवन का सर्वोच्च आदर्श है, इसी को परिप्रेक्ष्य में रखते हुए स्वामीजी ने मेरी लुई को संन्यास व्रत में दीक्षित किया, यद्यपि एक निष्ठावान शिष्य के तौर पर उनमें अपेक्षित गुणों का अभाव था।

किसी भी प्रकार की दासता, चाहे वह स्व-आरोपित हो अथवा सामाजिक विधान हो, स्वामीजी उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे। इसलिए नारी-स्वाधीनता के प्रति उनका विशेष आग्रह था। इसके अनेक कारण थे। प्रथम, यदि इतिहास की ओर दृष्टि डालें, तो प्राच्य और पाश्चात्य, दोनों स्थानों पर स्त्रियों पर अनेक अत्याचार हुए हैं और स्वामीजी किसी भी प्रकार के अत्याचार से घृणा करते थे। द्वितीय, यह सम्पूर्ण विश्व शक्ति की अभिव्यक्ति है। शक्ति के उपासक स्वामीजी को यह देखकर दुःख होता था कि नारियों के प्रति उपेक्षित व्यवहार किया जा रहा है और उन्हें निकृष्टतर समझा जा रहा है, जो कि वे नहीं हैं। उनका वास्तविक स्वरूप क्या है? वे साक्षात् जगदम्बा का स्वरूप हैं, बल और शक्ति उनका स्वभाव एवं जन्मसिद्ध अधिकार है।

स्वाधीनता क्या है?

स्वाधीनता अथवा मुक्ति के परिप्रेक्ष्य में ही प्राच्य और पाश्चात्य नारियों के प्रति स्वामीजी के विचारों को समझा जा सकता है। मुक्ति का क्या अर्थ है और हम किससे मुक्त होना चाहते हैं? हम उन बन्धनों से मुक्त होना चाहते हैं, जो हमें हमारे स्वाभाविक देवत्व से दूर करते हैं। अज्ञान से हमारा दिव्य स्वरूप आच्छन्न रहता है। दिव्यता ही हमारा स्वरूप है किन्तु अज्ञानवश हम अपने निम्न स्वभाव से, शरीर-मन के संघात से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। सभी व्यक्तिगत और सामाजिक बन्धनों का यही एकमात्र कारण है। अज्ञानवश हम अपने वास्तविक स्वरूप को भूल जाते हैं और दूसरों के बारे में भी भ्रान्त धारणा बना लेते हैं। मनुष्य में उसके दिव्य स्वरूप को देखने के बजाय हम लिंग, जाति, वर्ग, राष्ट्रीयता का भेद देखते हैं।

मनुष्य रूप में हम सचमुच महान एव उदार हैं और इन सबका आधार है हमारी दिव्यता जो हम सबमें विद्यमान है। इस आधार पर यदि हम स्वयं को मनुष्य के रूप में भी ग्रहण करें, तो इससे हमें अपनी महानता का बोध होगा। स्वामीजी कहते हैं, "हमें यह नहीं सोचना चाहिये कि हम केवल स्त्री और पुरुष हैं। हम मनुष्य हैं और एक-दूसरे के प्रति स्नेह और सहायता के लिए हमने जन्म ग्रहण किया है।" यही हमारा आरम्भ बिन्दु है। लिंग-भेद से स्वयं को पृथक कर हमें मानवता के एकसूत्र से तादात्म्य स्थापित करना होगा। इसी पृथक्करण अथवा विपरीत तादात्म्य के द्वारा हम सही अर्थ में अपने स्वरूप से एकात्मता स्थापित

कर सकते हैं।

अमेरिका में स्वामीजी उन नारियों से मिले, जिनमें तीव्र बुद्धि के साथ-साथ उच्चतम आध्यात्मिक पिपासा भी थी। भारतीय बहनों की अपेक्षा वे हजार गुना अधिक स्वाधीन थीं। भारतीय नारियाँ बहुत अधिक सीमित, नियन्त्रित, शिक्षा से वंचित और अनेक कष्ट झेलने को बाध्य थीं। किन्तु इन विभिन्न बन्धनों के बावजूद भी उन्होंने अपना उच्चतम आध्यात्मिक स्तर बनाए रखा। अमेरिकी श्रोताओं को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा था, ''मैं बहुत चाहता हूँ कि हमारी नारियों में आपके जैसी बौद्धिकता हो, परन्तु यदि वह चारित्रिक पवित्रता का मूल्य देकर ही आ सकती हो, तो मैं उसे नहीं चाहूँगा। आपको जो कुछ आता है, उसके लिए मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ, लेकिन जो बुरा है, उसे गुलाबों से ढँककर अच्छा कहने का जो यत्न आप करती हैं, उससे मैं घृणा करता हूँ। बौद्धिकता ही परम श्रेय नहीं है। नैतिकता और आध्यात्मिकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। हमारी स्त्रियाँ इतनी विदुषी नहीं, परन्तु वे अधिक पवित्र हैं।''

पवित्रता का क्या अर्थ होता है? काम-वासना, लिंग-भेद एवं अन्य तुच्छ भाव जिनसे तादात्म्य स्थापित कर हम देह के प्रति आसक्त हो जाते हैं और अपने स्वरूप को भूल जाते हैं, इन सबसे मुक्ति पवित्रता कहलाती है। स्वामीजी कहते हैं, ''भारतीय जाति का आदर्श है – आत्मा की मुक्ति।'' प्राच्य अथवा पाश्चात्य, स्त्री या पुरुष, स्वामीजी सबके लिए आत्मा की मुक्ति चाहते थे। उस मिथ्या तादात्म्य से मुक्ति जिससे हम दृढ़ आबद्ध हैं। भारत की यह विशेषता रही है कि कितनी ही विषम परिस्थितियों के बावजूद भी मुक्ति के इस आदर्श को उसने समझा, स्वीकारा और सराहा।

पाश्चात्य में, विशेषकर अमेरिका में मुक्ति अथवा स्वाधीनता का अर्थ राजनैतिक एवं सामाजिक मुक्ति के रूप में लिया गया। उसे कभी भी आध्यात्मिक स्तर प्राप्त नहीं हुआ है। यद्यपि पाश्चात्य में राजनैतिक एवं सामाजिक स्तर पर स्वाधीनता प्राप्त हुई है, तो भी उससे उत्पन्न सामाजिक दोष कुछ कम नहीं हैं। वहाँ स्वाधीनता को बहुधा उच्छृंखलता के रूप में समझा जाता है। यह स्वाधीनता नहीं बल्कि इन्द्रियों के प्रति निरी दासता है, जो क्रमशः हमें बन्धन के गर्त में ले जाती है।

स्वामीजी कहते हैं, ''आदर्श स्त्रीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है।'' स्वाधीनता का अर्थ यह नहीं कि मर्यादाओं को ताक पर रख हम जब जैसा चाहें वैसा स्वेच्छाचार करें। निश्चय ही स्वामीजी जिस प्रकार की स्वाधीनता चाहते थे और हमारे प्राचीन ऋषिगण भी जिसका उपदेश दे गए हैं, वह इन्द्रिय-परायणता में नहीं, बल्कि इन्द्रिय-विमुखता में है, इन्द्रियों के सम्मोहन से छूटने में है। स्वामीजी की दृष्टि में स्वाधीनता का अर्थ इस ज्ञान से है कि मेरा वास्तविक स्वरूप पूर्ण है तथा कोई भी व्यक्ति अथवा वस्तु मुझे अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण नहीं बना सकती, क्योंकि मैं पहले से ही पूर्ण हूँ। मैं किसी पर निर्भर नहीं हूँ और न ही मेरे पर कोई निर्भर है, क्योंकि मुक्ति मेरा वास्तविक स्वरूप है। दिव्यता अपने आप में पूर्ण है, उसे अन्य किसी आलम्बन की आवश्यकता नहीं है।

यदि आलासिंगा स्वामीजी की कार्यप्रणाली से कुछ विस्मित हुए हों, तो सहस्रद्वीपोद्यान (अमेरिका) में भगिनी क्रिस्टीन भी निम्नलिखित घटना से कुछ कम चकित नहीं हुई होंगी। १८९५ की बात है। स्वामीजी एक बार जंगल में टहलने गए। इस घने जंगल में भूमि के ऊपर झाड़ियाँ घनी और उजाड़ थीं। टहलने के लिए कोई सीधा-सरल मार्ग न था। नमी के कारण मार्ग फिसलन भरा हो गया था। जंगली मार्गों पर चलने की अनभ्यस्त भगिनी क्रिस्टीन आशा कर रही थीं कि स्वामीजी उन्हें हाथ का सहारा देंगे। वे जानती थीं कि स्वामीजी की नारियों के प्रति उच्च धारणा है। किन्तु जब अपेक्षित सहायता नहीं मिली, तो वे क्षुब्ध हो गईं। वे लिखती हैं, 'हम चट्टानों पर चढ़ रही थीं और नीचे फिसल रही थीं, किन्तु स्वामीजी से मदद मिलने की कोई आशा नहीं दिख रही थी। स्वामीजी हमेशा की तरह समझ गये कि हमारे मन में क्या चल रहा है। वे बोले, 'यदि तुम दुर्बल-असहाय अथवा वृद्धा होती तो मैं अवश्य तुम्हारी सहायता करता। किन्तु तुम पूरी तरह से समर्थ हो एवं बिना किसी सहायता से इस गड्ढे को कूद कर पार कर सकती हो और ढलान पर चढ़ सकती हो। तुम भी उतनी ही सक्षम हो जितना कि मैं। मैं क्यों तुम्हारी सहायता करूँ? क्योंकि तुम एक स्त्री हो? यह एक दुर्बल के प्रति रक्षा की भावना मात्र है और क्या तुम्हें नहीं लगता कि यह केवल लिंग-भेद है? क्या तुम नहीं देखती कि पुरुष और स्त्री के बीच इन सब मान्यताओं के पीछे क्या है?' आदर्श स्त्रीत्व का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता है – स्वामीजी के इस आदर्श का यहाँ ज्वलन्त उदाहरण देखने को मिलता है।

स्वाधीनता का व्यावहारिक पक्ष

व्यावहारिक तौर पर इसका अर्थ इस प्रकार है – "नारी पर पुरुष क्यों शासन करे? उसी प्रकार, पुरुष पर नारी क्यों शासन करे? प्रत्येक व्यक्ति स्वाधीन है।" यद्यपि अमेरिकी नारियों को उनकी भारतीय भगिनियों की अपेक्षा अधिक सामाजिक स्वाधीनता प्राप्त थी, पर इसका उन्होंने दुरुपयोग किया है। नारियों के प्रति दुर्बल-रक्षा की भावना पोषित की जाती है, क्योंकि वे अबला एवं असहाय समझी जाती हैं। वे अबला एवं असहाय न भी हों, तो भी उनसे इसी प्रकार का व्यवहार अपेक्षित किया जाता है। स्वामीजी जानते थे कि सचमुच ही यह भावना कितनी अहितकर है। बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से यह तर्कसंगत नहीं है। बौद्धिक दृष्टि से इसलिए कि तथ्यात्मक रूप से इसका कोई आधार नहीं मिलता। स्त्रियाँ इसे जानतीं हैं और केवल अपनी सुविधा के लिए ही इसका उपयोग करती हैं। इस प्रकार का व्यवहार प्रवंचना और छल के अलावा कुछ नहीं है। स्वामीजी इसके बारे में कहते हैं, 'यदि तुम किसी को सिंह नहीं होने दोगे, तो वह लोमड़ी हो जाएगा। स्त्री एक शक्ति है, किन्तु अब इस शक्ति का प्रयोग केवल बुरे विषयों में ही हो रहा है। इसका कारण यह है कि पुरुष स्त्रियों के ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। आज स्त्रियाँ लोमड़ी के समान हैं, किन्तु जब उनके ऊपर और अधिक अत्याचार नहीं होगा, तब वे सिंहनी होकर खड़ी होंगी।'

नारियों के प्रति दुर्बल-रक्षा की भावना आध्यात्मिक दृष्टि से भी तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि समस्त बल, समस्त पवित्रता एवं शक्ति उनमें है। हम अज, अमर, शुद्ध, मुक्त आत्मा हैं। केवल इसी आत्म बल के द्वारा हम अपने दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार कर सकते हैं। उपरोक्त घटना में स्वामीजी द्वारा की गई भर्त्सना का उल्लेख कर भगिनी क्रिस्टीन कहती हैं, "पुरुषों से वे पौरुष और नारियों से भी उसी के समतुल्य भाव की अपेक्षा रखते थे, जिसके लिए कोई शब्द नहीं है। वह भाव आत्म-दया के विपरीत था और दुर्बलता तथा भोगासक्ति का शत्रु था। यह दृष्टिकोण एक टॉनिक-सा प्रभाव डालता था। बहुत समय से सुप्त पड़ी कोई क्षमता जगा दी जाती और उसके साथ ही शक्ति तथा स्वाधीनता आ जाती थी।'

बल और स्वाधीनता एक साथ रहते हैं। बल के द्वारा ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है और स्वाधीनता से ही आध्यात्मिक विकास तथा साक्षात्कार होता है। इसी बात का ध्यान रखते हुए स्वामीजी ने पाश्चात्य नारियों को ब्रह्मचर्य एवं संन्यास व्रत में दीक्षित किया और हजारों वर्षों से चली आ रही तथाकथित मान्यताओं का निर्भयतापूर्वक खण्डन किया।

स्वामीजी कहते हैं कि, "सबसे बड़ा मिथ्या ज्ञान तो यह है कि हम शरीर हैं। हम कभी भी शरीर नहीं थे, और न कभी हो सकते हैं।" वे स्त्रियों को कभी भी अपेक्षाकृत कम नहीं समझते थे। आज स्त्रियों का संन्यास ग्रहण करना कोई आश्चर्य में डालने वाली बात नहीं मानी जाती। यह एक असामान्य जीवन-पद्धति है, विशेषकर पाश्चात्य में जहाँ त्याग को एक विवेकपूर्ण जीवन-वृत्ति के रूप में नहीं देखा जाता। किन्तु शताब्दी पूर्व स्त्री को संन्यास-व्रत में दीक्षित करना और वह भी पाश्चात्य स्त्री को - सचमुच अकल्पनीय था। इस तरह की निर्णायक भूमिका स्वामीजी की विलक्षण दूरदर्शिता और निर्भयता को इंगित करती है और सचमुच यह कार्य केवल स्वामी विवेकानन्द जैसे के लिए ही सम्भव था।

स्त्रियों के लिए संन्यास-व्रत

प्राच्य अथवा पाश्चात्य, समस्त नारी एवं पुरुष को स्वामीजी के इस कार्य के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए। हम सभी उनके विशाल हृदय, दूरदर्शिता, मुक्ति-पथ पर ले जाने की उनकी तीव्र आकांक्षा के भागीदार हैं। हमें यह स्मरण होना चाहिए की स्वामीजी स्त्रियों के लिए संन्यासिनी संघ की स्थापना करना चाहते थे, यहाँ तक कि उन्होंने रामकृष्ण संघ की मठ-नियमावली में भी इसका उल्लेख किया है। इसके केन्द्र में वे माँ सारदा को विराजमान करना चाहते थे। वे अपने गुरुभाई स्वामी शिवानन्दजी को पत्र में लिखते हैं –

"श्रीमाँ का स्वरूप तत्त्वतः क्या है, तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो, तुममें से एक भी नहीं। किन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे। भाई, शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधम है, शक्तिहीन है, पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति की अवमानना होती है। उस महाशक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए श्रीमाँ का आविर्भाव हुआ है, और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से जगत् में गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म

(शेष भाग १४० पर)

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द,
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

१८. भारत के कल्याण के लिय स्वामी विवेकानन्द ने संन्यास लेना ही क्यों उचित समझा? वे दूसरे रूप में भी तो भारत का कल्याण कर सकते थे?

अजय सिंह, अम्बिकापुर

यह प्रश्न मूल रूप में ही असत्य है। स्वामीजी ने कहीं भी समाज के कल्याण के लिए संन्यास को ही एकमात्र उपाय नहीं कहा है। संन्यास कुछ अधिकारी विशेष व्यक्तियों के लिये है। उनके आदर्श को देखकर समाज के कुछ व्यक्ति प्रेरणा पाकर संन्यास ग्रहण करते हैं तथा समाज की सेवा और उत्थान में लग जाते हैं। किन्तु संन्यास ही समाज के उत्थान का एकमात्र उपाय नहीं है। ऐसा स्वामीजी ने कहीं नहीं कहा है। स्वामीजी को यही उचित लगा कि संन्यास लेकर ही समाज सेवा तथा ईश्वरप्राप्ति की साधना वे अच्छी तरह कर सकेंगे। इसीलिये उन्होंने संन्यास लिया।

१९. आज के युवाओं में नैतिक पतन बहुत तेजी से हो रहा है, इसके नियन्त्रण के उपाय बतावें।

सुरेन्द्र कुमार, पी.जी. कालेज, अम्बिकापुर

आधुनिक युवाओं के सामने प्रलोभन एवं भोगाकांक्षा के इतने अधिक साधन उपलब्ध हो गये हैं कि उन्हें भोग के अतिरिक्त भी जीवन का कोई उच्च आदर्श हो सकता है, यह दिखाई ही नहीं पड़ता। समाज में भोगवाद प्रधान एवं सुलभ हो गया है, इसी कारण युवा पीढ़ी भोग को ही अपना आदर्श मान बैठी है। इसलिये भोगवाद प्रबल हो उठा है। इसका एकमात्र निदान यह है कि विचारशील लोग स्वामीजी द्वारा दिखाये गये एवं आचरित जीवन पद्धति तथा उद्देश्य को स्वीकार कर जीवन बिताने का प्रयत्न करें तथा भोगवाद की झंझा की उपेक्षा कर उसके दोष युवापीढ़ी के सामने अपने आचरण द्वारा रखें। केवल शाब्दिक उपदेशों से भोगवाद की बाढ़ नहीं रोकी जा सकती। उसके लिये स्वयं व्यावहारिक आदर्श जीवन बिताकर ज्वलन्त आदर्श युवाओं के समाने रखना होगा।

२०. वेदान्त क्या है? मनीष, अम्बिकापुर

वेदान्त एक सामासिक शब्द है। इस शब्द को यदि हम परिभाषित करें, तो वह वेद+अन्त, ऐसा होगा। इसका शाब्दिक अर्थ होगा – वेदों का अन्त या समाप्ति। इसका दूसरा गम्भीर एवं गहन अर्थ होता है – वेदों में निहित ज्ञान का परिपाक या वैदिक ज्ञान का परिपक्व अर्थ।

वेदान्त में मनुष्य के स्वरूप का चरम अर्थ उद्घाटित किया गया है। संक्षेप में मनुष्य केवल हाड़- मांस का एक जीवित पुतला मात्र नहीं है।

संसार के सभी प्राणियों में, सभी जड़ चेतन वस्तुओं में, पहाड़ों-नदियों में एक परम तत्त्व व्याप्त है। वेदान्त में उसे ब्रह्म या आत्मा कहते हैं। वेदों के अन्तिम अध्यायों में इसकी चर्चा है। इसलिए इसे वेदान्त कहा जाता है। इसका तात्त्विक अर्थ परम ज्ञान या जगत का परम सत्य है। यही वेदान्त है। इसे ही ब्रह्म तथा आत्मा कहते हैं।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मा और ब्रह्म एक ही है। किन्तु वेदान्त की अन्य सभी शाखाओं में जीव और ब्रह्म का भेद माना जाता है। ऐसा कह सकते हैं कि जीव ब्रह्म का ही एक अंश है। यही वेदान्त है।

भारतीय सांस्कृतिक क्रान्ति

अशोक भार्गव

युग की जड़ता के खिलाफ एक इन्कलाब है।
हिन्द के जवानों का एक सुनहरा ख्वाब है।।
भारतीयत सांस्कृतिक क्रान्ति, मानवीय सांस्कृतिक क्रान्ति
व्योम में हमारी पहुँच बढ़ रही है आज पर,
दूर हो रहा है घर पड़ोस का।
आदमी को आदमी के करीब लाएगी, भारतीय ...
आदमी भविष्य में यन्त्र का न हो गुलाम,
मानवीय गुण बढ़ेगें काम से।
ऐसे योग्य युक्त काम हर जगह चलाएगी, भारतीय...
ले के हाथ हल-कुदाल और ज्ञान की मशाल,
आओ चलें साथ-साथ गाँव को।
क्योंकि गाँव-गाँव से दीनता मिटाएगी, भारतीय ...
(प्रेरणा गीत, एस. एन. सुब्बाराव, से साभार)

वीर शिवाजी

भारत देश आज स्वतन्त्र है। परन्तु इस स्वतन्त्रता के पहले अनगिनत वीर अपने प्राणों का बलिदान देकर अमर हो गए हैं। इन वीरों में सबसे प्रथम नाम यदि किसी का आता है, तो वह नाम है छत्रपति शिवाजी महाराज। उन्हें देखने मात्र से एक आदर्श भारतीय युवक कैसा होना चाहिए, इसकी झलक मिल जाती है। बचपन में उनकी माता जीजाबाई उन्हें शिवबा कहकर पुकारती थीं। उनकी माँ उन्हें रामायण, महाभारत, पुराण, देशसेवा, स्वतन्त्रता-प्राप्ति आदि की गाथाएँ सुनाती थीं। शिवबा भी बड़े ध्यान से उन सब कहानियों को सुनते थे। बचपन में अपने मित्रों के साथ वे राजा-प्रजा का खेल खेला करते थे। इसके साथ तलवार चलाना, घुड़सवारी, कुश्ती आदि के खेलों में भी वे निपुण हो गए थे। शिवाजी का सारा जीवन ही वीरता की अद्भुत घटनाओं से भरा है। साधु-सन्तों के प्रति भी उनके मन में बचपन से ही श्रद्धा थी। वे जैसे-जैसे बड़े होते गए, उनके मन में गुरु-प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई। उन्होंने महाराष्ट्र के बड़े सन्त समर्थ रामदास महाराज के बारे में बहुत सुना था। उन्हें भी उनसे दीक्षा लेने की इच्छा हुई। समर्थ रामदास किसी स्थान में दो-तीन दिन से अधिक नहीं रुकते थे। इसलिए शिवाजी को भी उनके दर्शन करने के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ा। अन्ततः उन्होंने एक दिन प्रतिज्ञा ली कि जब तक रामदास जी के दर्शन नहीं होंगे, तब तक वे अन्न-जल ग्रहण नहीं करेंगे। शीघ्र ही उन्हें एक दिन जंगल में समर्थ रामदास जी के दर्शन हुए और उन्होंने शिवाजी को शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया। शिवाजी महाराज की इच्छा हुई कि वे सब कुछ छोड़कर अपने गुरुजी की सेवा करें। किन्तु गुरु रामदास जी ने उन्हें स्मरण दिलाया कि सारा देश लगभग मुगलों का गुलाम हो चुका है और देश को स्वतन्त्रता दिलानी होगी। शिवाजी महाराज ने अपना पूरा जीवन देशसेवा में समर्पित कर दिया और देश का खोया हुआ आत्म-सम्मान पुनः जाग्रत किया। ○○○

माँ कब आएगी होली?

**बड़े प्रेम से मैंने पूछा,
माँ कब आएगी होली ।
कब हम गले से गले मिलेंगे ,
कब भरेंगे गुलाल की झोली ।।**

**यह भी बताओ माँ,
यह होली क्यों आती है?
क्यों हम इसे मनाते,
क्या हमको सिखलाती है?**

**बच्चे का प्रश्न सुन माँ,
मन ही मन हरषायी ।
बड़े सहर्षोल्लास,
वह बच्चे को बतायी ।।**

**बेटा फाल्गुन पूर्णिमा को,
यह शुभ होली आती है ।
ईर्ष्या-भेद-भाव भुलाकर,
रहना सिखलाती है ।।**

**इसमें पौराणिक गाथा है,
सुन लो तुम चित्त लगाकर ।
प्रह्लाद-वध करने को,
हिरणकशिपु ने ढोंग रचाकर ।।**

**बोला बहन होलिका से,
इसे अपने गोद बिठाओ ।
जलाकर भष्म करो शीघ्र,
इसका हरिनाम छुड़ाओ ।।**

**होलिका प्रह्लाद को गोद ले बैठी,
दानव ने आग लगाये ।
प्रभु-कृपा होलिका जली,
प्रह्लाद सुरक्षित बच पाये ।।**

**बेटा इसी खुशी में सब
रंग-अबीर उड़ाते ।
राग-द्वेष-शत्रुता भुलाकर,
सबको गले लगाते ।।**

**पूआ-पूड़ी और मिठाई,
सब मिल-बाँटकर खाते ।
एक साथ सब मिलकर के,
होली के गीत को गाते ।।**

**हम सब एक हैं, एक रहें,
यह होली सिखलाती है ।
हर वर्ष आबाल-वृद्धों में,
नव-चेतना भर जाती है ।।**

**अखण्ड भारत में यह,
एकता का सन्देश सुनाती ।
प्रेम-एकता पाठ पढ़ाने,
प्रतिवर्ष शुभ होली आती ।।**

— स्वामी प्रपत्त्यानन्द

तप का बहुआयामी महत्त्व

डॉ. दिलीप धींग, निदेशक, अन्तर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र, चेन्नई

भारतीय संस्कृति तप-त्याग प्रधान संस्कृति है। ऋषि-मुनियों और मनीषियों ने तप के सम्बन्ध में व्यापक और सूक्ष्म चिन्तन किया है। तप जीवन को पावन करने की कला और साधना है। तपस्वियों के तप के परिणाम स्वरूप ही भारत ज्ञान-विज्ञान में इतना आगे बढ़ा कि 'विश्वगुरु' कहलाने लगा। तप से कर्म-निर्जरा होती है। तप के प्रभाव से जीवन में अनेक अद्भुत और उपयोगी ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। क्या बिना तप के कुछ पाया जा सकता है?

अग्नि-स्नान किये बिना घड़ा पानी भरने योग्य नहीं बनता है। स्वर्ण तपने पर ही निखरता है। सूरज तपता है इसलिए संसार को प्रकाश और ऊर्जा देता है। मक्खन भी तपने पर ही शुद्ध होता है एवं मक्खन की शुद्धि के लिए पात्र को भी तपना पड़ता है। उसी प्रकार आत्मा और चित्त को निर्मल बनाने के लिये शरीर को भी तपना या तपाना पड़ता है। तप, बिना पानी का स्नान है।

आज के भौतिक, भोगवाद और उपभोक्तावाद के स्पर्धात्मक दौर में मनुष्य मशीन की तरह हो गया है। मनुष्य शरीर को सब कुछ मानकर, केवल शरीर के स्तर पर जीकर जीवन के वास्तविक अर्थ और उद्देश्य से दूर होता जा रहा है। जबकि शरीर अलग है और जिसके सहारे शरीर टिका हुआ है, वह जीवात्मा अलग है। जीव और अजीव के, देह और आत्मा के इस भेद-विज्ञान को भली-भाँति समझ कर आत्मा के लिये और आत्म-तत्त्व की प्राप्ति के लिये जीवन को तपाना तप है। तप करने के साथ मन के विकारों, कषायों और बुराइयों का त्याग भी परमावश्यक है। '**इच्छानिरोधस्तपः** – अर्थात् इच्छाओं को रोकना और कम करना तप है। मन एवं इन्द्रियों को नियन्त्रित किये बिना किया जाने वाला तप महज ताप होता है, जो तरह-तरह के सन्ताप और परिताप पैदा करता है।

तप के अनेक प्रकारों में से उपवास की लोकप्रियता और महत्ता से कोई अपिरिचित नहीं है। उपवास का अर्थ है – आत्मा के समीप रहना। भोजन शरीर की खुराक है, तो उपवास आत्मा की। उपवास का आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, शारीरिक, चिकित्सकीय आदि सन्दर्भों में भी उपवास का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। उपवास से शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक निर्मलता, मानसिक शान्ति और संकल्प शक्ति में वृद्धि होती है। उपवास के अनेक सफल चिकित्सकीय प्रयोग हुए और हो रहे हैं। अनेक दु:साध्य और असाध्य रोग उपवास से नियन्त्रित और समूल नष्ट हो जाते हैं। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि दुनिया में भुखमरी से नहीं, बल्कि अधिक खाने से ज्यादा लोग मरते हैं। भूख से कम खाना भी एक तप है और स्वर्णिम स्वास्थ्य-सूत्र भी। किसी निश्चित समयावधि तक आहार का पूर्णत: या आंशिक त्याग करना दृढ़ मनोबल वाले व्यक्ति का कार्य है। तपस्या करने वाला अनायास ही अनेक रोगों व समस्याओं से बच जाता है तथा दूसरों को भी बचा लेता है।

रसना और वासना का गहरा सम्बन्ध होता है। रसना-संयम करने से व्यक्ति वासनाओं पर भी विजय प्राप्त कर सकता है। चूँकि वासना पर विजय प्राप्त करना बहुत दुष्कर कार्य है, इसलिये शास्त्रों में ब्रह्मचर्य को सर्वश्रेष्ठ तप और सर्वोपरि साधना कहा है। समाज में संयम व संकल्प के अभाव को तप के द्वारा पूरा किया जा सकता है। संयम और तप से साधनों, संसाधनों और खाद्यान्न का अपव्यय भी रुकता है।

कई अवसरों पर जब देश अनेक समस्याओं से जूझने लगा, तब उपवास और आहार-संयम के सफल सामूहिक प्रयोग किये गये। जैन समाज में संवत्सरी आदि अवसरों पर सामूहिक उपवास किये जाते हैं। जब सामूहिक रूप से बहुत सारे व्यक्ति कोई छोटा-सा त्याग भी करते हैं, तो उसका बड़ा सुपरिणाम सामने आता है। सामूहिक उपवास-तप से राष्ट्र में लाखों टन अनाज और खाद्य-पदार्थों की बचत होती है। भुखमरी से त्रस्त दुनिया तथा अविकसित, विकासशील देशों के लिये यह तथ्य एवं प्रयोग वरदान सिद्ध हुआ और हो सकता है। आत्म-शुद्धि के अलावा तप से देश-दुनिया में सुख, शान्ति और समृद्धि का वातावरण बनता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, महामारी, भूकम्प आदि प्राकृतिक आपदाएँ तथा अन्य विघ्न-संकट भी तप से टल जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं।

'त' यानि तत्काल, 'प' यानि पवित्र, अर्थात् जो तत्काल पवित्र करे, वह तप है। तप से मन शुद्ध, वचन निर्मल और आचरण उत्तम हो जाता है। आत्मा पर अनन्त काल से लगे हुए कर्मों के नष्ट हो जाने से अपार अपूर्व

आनन्द की अनुभूति होती है। आधि, व्याधि और उपाधि का नाश होता है और समाधि-भावों की प्राप्ति होती है। तपस्वी अजेय, ऊर्जावान, संकल्पवान, स्वस्थ, समर्थ एवं योग्य बनता है।

तीर्थंकर भगवान महावीर ने सिर्फ अनशन (आहार-त्याग) को ही तप नहीं कहा, अपितु विनय (अहंकार का परित्याग), वैयावृत्य (सेवा), स्वयं के दोषों का प्रायश्चित (आत्म-आलोचना), स्वाध्याय, ध्यान आदि को भी तप कहा है। गुणों व गुणियों का विनय और सम्मान करना, अपने अहंकार को छोड़ना, उपकारीजनों तथा असहायों की सेवा-शुश्रूषा करना आदि मामूली बातें नहीं हैं। स्वाध्याय और ध्यान के द्वारा मानव बहिर्मुखी से अर्न्तमुखी बनता है। शाश्वत सुखों की प्राप्ति के लिये जीवन और जगत के छोटे-छोटे क्षणिक सुखों का त्याग करना आवश्यक है। जिस प्रकार प्रचण्ड गर्मी के पश्चात शीतल जल की बरसात होती है, उसी प्रकार तप के पश्चात जीवन में सुख-शान्ति की वर्षा तथा खुशहाली की हरियाली होती है। वस्तुत: तप व्यक्ति-निर्माण से विश्व-निर्माण की प्रक्रिया का नाम है।

हम जीवन में थोड़ा-सा विवेक व सावधानी रखें तो सहज ही कई प्रकार से तप कर सकते हैं। जीवन में समस्याओं का अम्बार है। आई हुई समस्याओं को समभाव से स्वीकार कर सहन कर लेना भी तप ही है। अपने द्वारा दूसरों को अनावश्यक कष्ट या परेशानी नहीं होने देना तप की तरह है। यदि हम थोड़ी-सी गर्मी या सर्दी सहन कर सकें और पंखा या हीटर नहीं चलाएँ, तो सहज ही तप हो जाएगा और शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में भी वृद्धि होगी। दो बाल्टी की बजाय एक बाल्टी से या थोड़े पानी से स्नान कर लेना, किसी को अपशब्द नहीं बोलना, गिरते हुए आदमी का हाथ थाम लेना, मरते हुए प्राणी की रक्षा करना आदि सत्कार्यों में भी हमारी तपस्या होती है तथा तपस्या की परीक्षा होती है।

तप के साथ तप का अंहकार नहीं होना चाहिये। क्रोध आदि कषायों से तप का वांछित फल नहीं मिलता है। हम तप से जीवन को तपाएँ-खपाएँ और जीवन में खूब शक्ति, शान्ति, ऊर्जा और तेजस्विता प्राप्त कर स्वयं का एवं सब का भला करें। अपनी इन काव्य-पंक्तियों के साथ विराम देता हूँ –

जो जला वो क्षणिक ही खीरा बना।
जो तपा वो कालजयी हीरा बना।। ○○○

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य
अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि रविर्जनैः।
ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्यां ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम्।।५४७

अन्वय – जनैः वस्तुलक्षणम् अज्ञात्वा (ग्रहणकाले) अग्रस्तः अपि रविः ग्रस्तवत् भानात् 'तमसा ग्रस्तः' इति भ्रान्त्या हि उच्यते।

अर्थ – वस्तु का स्वरूप न जानने के कारण ही (ग्रहण के समय) सामान्य लोग सूर्य के अग्रस्त होने पर भी अन्धकार के कारण ग्रस्त जैसा बोध होने से भ्रान्तिवश उसे (राहु द्वारा) ग्रस्त कहते हैं।

तद्वद्देहादिबन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम्।
पश्यन्ति देहिवन्मूढाः शरीराभासदर्शनात्।।५४८।।

अन्वय – तद्वत् देहादिबन्धेभ्यः विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम्, मूढाः शरीरभास-दर्शनात् देहवत् पश्यन्ति।

अर्थ – इसी प्रकार अज्ञानी लोग, देह तथा उससे जुड़े समस्त बन्धनों से मुक्त सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञ पुरुष के देहाभास मात्र को देखकर उसे देहवान समझते हैं।

अहिर्निर्ल्वयनीं वायं मुक्त्वा देहं तु तिष्ठति।
इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना।।५४९।।

अन्वय – व अहिः निर्ल्वयनीं, अयं देहं मुक्त्वा तिष्ठति, तु प्राणवायुना इतः ततः यत् किञ्चित् चाल्यमानः।

अर्थ – साँप जैसे अपने केंचुली को त्याग देता है, वैसे ही (ब्रह्मज्ञानी) 'देह' में अहंता-बोध से मुक्त होकर केवल प्राणवायु द्वारा थोड़ा-बहुत हिलते-डुलते हुए स्थित रहता है।

ब्रह्मज्ञ पुरुष का साक्षिभाव –

स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम्।
दैवेन नीयते देहो यथाकालोपभुक्तिषु।।५५०।।

अन्वय – स्रोतसा दारु यथा निम्न-उन्नत-स्थलम् नीयते, (तथा) देहः यथाकाल-उप-भुक्तिषु दैवेन नीयते।

अर्थ – जैसे लकड़ी का टुकड़ा नदी के प्रवाह द्वारा ऊँचे या नीचे स्थानों को ले जाया जाता है, वैसे ही (ब्रह्मज्ञ पुरुष का) शरीर दैव या प्रारब्ध कर्म के द्वारा यथाकाल उपस्थित होने वाले फलों का उपभोग करता रहता है। (उसकी अपनी इच्छा-अनिच्छा या अभिमान का लेशमात्र भी नहीं रहता।)

काव्य-लहरी

विवेकानन्द नहीं बन पाता है

चित्रांश बाघमारे, भोपाल

उद्गार प्रखर, उच्चार प्रखर, यश-तेज कीर्ति विस्तार प्रखर ।
उर में व्याकुल वह दाह प्रखर, वाणी का ओज-प्रवाह प्रखर ।।
तप दीप्त भंगिमाएं शत-शत, आलोड़ित हो पाश्चात्य जगत ।
बलदृप्त केसरी-सा नर लख, था उनके आगे हुआ विनत ।।
यशधन्य बंग की भूमि पर, जन्मा था वह साधक अनन्य ।
आँचल में पुरुष रत्न पाकर धरती पुकारती धन्य-धन्य ।।
सुन वीर धर्मसंवाहक का रण-नाद, रूढ़ियाँ थर्राई ।
आडम्बर से संग्राम हेतु नर की अकाट्य प्रतिभा आई ।।
जो परम विवेकी, सत्यनिष्ठ निज में आनन्द मनाते थे ।
वह धर्म-मर्म के उद्धारक विवेकानन्द कहाते थे ।।
अपने भीतर की आभा को, पहचान नहीं नर पाता है ।
कुछ पाकर कुछ खोकर के, स्वयं ठगा रह जाता है ।।
पर गुरु के श्रीचरणों में, जब कोई शीश नवाता है ।
खोता केवल अज्ञान मनुज, बाकी पाता ही पाता है ।।
ऐसे गुरु की प्रत्याशा में, व्याकुल साधक की तरूणाई ।
आशा गुरु के सानिध्यों की खींच दक्षिणेश्वर लाई ।।१।।
थे मिले गुरु खुद परमहंस, सारे प्रपंच से सदा दूर ।
उनकी दृष्टि थी देख सकी, भारत-भविष्य का सुदूर ।
उनका यह अग्रणी शिष्य सप्तसिंधु तक लांघ गया ।
जिसको देखा, क्षण भर में आकर्षण में बांध गया ।।
देश-विदेश पूरब-पश्चिम चहुँदिशि फैला उसका विक्रम ।
दोनों के ही सम्मुख आते आदर्श नवीन, नूतन नियम ।।
था गया तपी अमरीका में अंतस् में भातृ-भाव भरकर ।
कहा सभी नारायण हैं, करो सेवा उनकी जी-भरकर ।।
जैसे कि पुष्प सौरभ अपना, नित साथ जुगाये चलता है ।
वह जहाँ रहे, अपनी सुगन्ध, जग में फैलाये रहता है ।।
उस भाँति विवेकानन्द स्वयं फैलाते उन सन्देशों को ।
त्याग, धर्म, पावनता के मानवता के उपदेशों को ।।
शून्य से शिखर तक जो आए स्वयं त्याग हिमवान बने
उपमा देकर सद्धर्मों की, स्वयं आप उपमान बने ।।
यह निराकार साकार द्वंद्व, अद्वैत-द्वैत का सम्मोहन ।
वे बता गये ये साध्य नहीं, साधना पंथ के आकर्षण ।।
देख दूसरों के दुख भी, जिस नर का हृदय न रोता है ।
बने भले ही और कुछ, बन विवेकानन्द न पाता है ।।

रामकृष्ण आये

जितेन्द्र कुमार तिवारी, कोरबा

करुणा को विस्तारित करने रामकृष्ण आए ।
दुखी जनों की पीड़ा हरने रामकृष्ण आए ।।
अंधकारमय घोर निशा में प्राणी थे भटके ।
सुप्रभात-सम तम को हरने रामकृष्ण आए ।।
जनता घोर निराशा में थी, था भविष्य धुँधला ।
जन-जन को उत्साहित करने, रामकृष्ण आए ।।
गलत राह पर चलने वाला, राह नहीं पाता ।
सत्यमेव जयते आचरने, रामकृष्ण आए ।।

पुकारे तुम्हें विवेकानन्द-धरा

फणीन्द्र कुमार पाण्डेय, चमापावत

प्रसन्नचित हो गये सभी बाल-वृद्ध नर-नारी-वृन्द ।
अवतरित हुए जब भारत भूमि पर स्वामी विवेकानन्द ।।
शौर्य-उत्साह की गति कभी न हो पाये यों मन्द ।
भय-निराशा त्याग कर सुन्दर कार्य करो स्वच्छन्द ।।
दीनता-आलस्य भय मृत्यु है, जागो हे नर-नारी-वृन्द ।
राष्ट्रप्रेम-त्याग-शौर्य भावना कभी न होने पाये मन्द ।।
देशद्रोहियों को हे युवकों उत्तर दो ऐसे खरा ।
जागो भारत के सपूत पुकारे तुम्हें विवेकानन्द-धरा ।।
सदा निसृत मम लेखनी से हो राष्ट्रप्रेम के छन्द ।
करूँ तुम्हें शत कोटि नमन हे स्वामी विवेकानन्द ।।

फाग खेलन मेरो कान्हा आयो

श्री रामबाबू व्यास

फाग की भीर भई ब्रज में,
जब माह सुहावन फागुन आयौ,
पाग मिठौरी सखा संग लै लई,
श्याम ने अपनों यूथ सजायौ ।
हाथ में ढाल मंजीरन जोरी,
श्याम को यूथ बरसाने कूँ धायौ,
दास व्यास श्रीराधे टेरत,
फाग खेलन मेरौ कान्हा आयौ ।।

(कार्ष्णि कलाप, मार्च, २०१४ से साभार)

ईश्वर चिन्तन

श्वेता सिंह, मुम्बई

प्राय: दैनिक जीवन में हम देखते हैं कि सभी भौतिक कार्यों का हमें निरन्तर स्मरण बना रहता है, परन्तु ईश्वर का स्मरण क्षीण हो जाता है। हम जीवन के दैनिक कार्य-कलापों में ऐसे व्यस्त हैं या यों कहें कि ऐसे उलझ गए हैं कि ईश्वर का स्मरण हमारे मस्तिष्क पटल से गायब सा हो जाता है।

जैसाकि श्रीरामकृष्ण देव (ठाकुर) कहते थे कि मूली खाने पर ढकार भी मूली की ही आती है, ठीक उसी तरह हमें संसार-ही-संसार दीखता आता है। हमें संसार की सभी भौतिक कार्यों की लालसा बनी रहती है। जब हम ईश्वर-चिन्तन के लिए जप और ध्यान की स्थिति में बैठने की कोशिश करते हैं, तब वहाँ भी यह भौतिक कार्यों का लेखा-जोखा हमें ईश्वरीय ध्यान में बाधा देता है। जिस प्रकार संसार के प्रति हमारा अनुराग रहने से हमारे चिन्तन में संसार की बातें या भिन्न कार्य-कलाप सहजता से हमारे ध्यान में रहते ही हैं, उतनी सहजता और सरलता से हम ठाकुर का चिन्तन नहीं कर पाते।

अब प्रश्न यह है कि कैसे हमारा ईश्वर-चिन्तन भी सहजता और सरलता से हो सके। इसका उपाय भक्ति ही है। भक्ति यानी अपने ईष्ट के प्रति दृढ़ अनुराग।

ठाकुर कहते थे कलिकाल में भक्ति पथ ही सबसे सरल है। हमें ईश्वर-चिन्तन बनाए रखने के लिये विभिन्न साधनों की आवश्यकता होती है, जैसे श्रवण, कीर्तन, स्मरण या चिन्तन, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, साख्य और आत्मनिवेदन। ये साधन ही नवधा भक्ति हैं।

आत्मनिवेदन या आत्मसर्मपण ही सभी भक्तों का अन्तिम लक्ष्य होता है। ठाकुर के शब्दों में जैसे, 'मैं यन्त्र, तुम यन्त्री हो'। इस स्तर तक पहुँचने के लिये हमें स्मरण और चिन्तन से होकर जाना होगा। यहाँ भी हम पाते हैं कि स्मरण और चिन्तन बनाए रखने के लिये हमें श्रवण, अर्चन, वंदन और कीर्तन की आवश्यकता पड़ती है।

इसका तात्पर्य यह है कि हम नियम से निष्ठापूर्वक ठाकुर का पूजन करें, उनकी स्तुति करें, उनके नाम का जप और संकीर्तन में भाग लें, उनकी लीला-कथाओं को सुने। हमें अधिक-से अधिक उनकी सेवा करनी चाहिए। इससे आत्मशुद्धि होगी और ईश्वर-चिन्तन दृढ़ होगा। प्रतिदिन ऐसा करने से हममें निष्ठा उत्पन्न होगी। तब हमारे अन्दर दास प्रवृति या कहें सेवक-प्रवृत्ति का उदय होगा। इससे हमें ठाकुर सेवा में रुचि उत्पन्न होगी। श्रद्धा और रुचि से ठाकुर के प्रति अनुराग होगा, जो सहजता और सरलता की स्थिति है, जिसकी हमें तलाश है। ठाकुर के प्रति अनुराग-प्रेम होने से उनमें मन लगने लगेगा और भक्ति दृढ़ होगी।

उनके प्रति भक्ति आने से संसार के सभी भौतिक कार्यों को करने पर भी हमारा मन नित्य ठाकुर में ही लीन रहेगा। यहाँ तक कि सांसारिक कार्यों को उनकी सेवा के भाव से करने पर सांसारिक आसक्ति घटती जाएगी और ठाकुर के प्रेम में नित्य नया अनुराग का अनुभव करेंगे, जिससे उनका विस्मरण कठिन कार्य हो जाएगा।

यह कहना जितना आसान है, कभी-कभी मानवीय दुर्बलताओं के कारण करना उतना ही कठिन हो जाता है। परन्तु हमें हार नहीं माननी चाहिए। नित्य ही ठाकुर से कृपा के लिये याचना करनी चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण भगवद्- गीता में कहते हैं –

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।।

– हे अर्जुन, यदि तुम मन को मुझमें स्थिर करने में असमर्थ हो, तो अभ्यास योग से मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो।

नित्य अभ्यास से कठिन से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाता है। पत्थर पर लकीर तक पड़ जाती है। श्रीमाँ और ठाकुर की अहैतुकी कृपा से हम सभी बाधाओं से निश्चय ही पार कर जाएगें। जय ठाकुर ! जय माँ ! ○○○

(पृ. १३४ का शेष भाग)

होगा। भाई, अभी तुम क्या देख रहे हो, धीरे-धीरे सब समझ जाओगे। इसलिए उनके मठ का होना पहले आवश्यक है। ...शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप में क्या देख रहा हूँ? शक्ति की उपासना। परन्तु वे उसकी उपासना अज्ञानवश इन्द्रिय भोग द्वारा करते हैं। फिर जो पवित्रतापूर्वक सात्विक भाव द्वारा उसे पूजेंगे, उनका कितना कल्याण होगा ! दिन-पर-दिन सब समझता जा रहा हूँ। मेरी आँखें खुलती जा रही हैं। इसलिए माँ का मठ पहले बनाना पड़ेगा। पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र, क्या तुम यह समझ सकते हो?...माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिए सर्वोपरि है।" ○○○

पुस्तक समीक्षा

विनय वाटिका

विनय वाटिका
रचनाकार – भानुदत्त त्रिपाठी, 'मधुरेश'
'साहित्य मण्डप'
चन्द्र कालोनी, शहजादपुर,
अकबरपुर – २२४ १२२
अम्बेडकर नगर (उ.प्र.)
दूरभाष – ७६६८५२५३४२
पृष्ठ -८८, मूल्य – ५०/-

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' जी से 'विवेक-ज्योति' के पाठक पूर्व परिचित हैं। क्योंकि उनकी सरस ज्ञानमय काव्य रचनायें कई वर्षों से विवेक-ज्योति में अनवरत प्रकाशित होती चली आ रही हैं। 'मधुरेश' जी की कई अमूल्य पुस्तकें हैं, जो साहित्य जगत एवं आध्यात्मिक जगत को उनकी देन है। अभी सद्यः प्रकाशित 'विनय-वाटिका' भी भक्तिजगत को आह्लादकारिणी है।
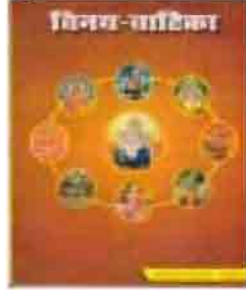
विनय वाटिका में 'मधुरेश' जी द्वारा रचित विभिन्न चालीसा एवं स्तोत्र हैं तथा कुछ अन्य विषयों पर रचित आध्यात्मिक कविताएँ हैं। प्रथम श्रीगणेश चालीसा में गणेशजी की वन्दना करते हुए लिखते हैं –

सिद्धि सदन करिवरबदन दूब दबाये शुण्ड।
एकरदन गणपति प्रभो ! हरउ विघ्न के झुण्ड।।
बालारुण-सम अरुण छबि, तरुण तेज दुतिमान।
शरण जानि अपनाइये लम्बोदर भगवान।।

इस पुस्तक में ऐसे ही आशुतोष चालीसा, कल्याणी चालीसा, सीता चालीसा और सरयू चालीसा हैं। अन्त में सबकी आरती भी है। आशुतोष चालीसा में शिव से प्रार्थना करते हुए कहते हैं –

वेद-पुराण-विविध गुण गावत।
कर जोरे त्रैलोक मनावत।।
तुम त्रिलोक-हित विष गल धारेउ।
दीन-अधीनन को तुम तारेउ।।
मेरी बार न नाथ विलम्बय।
शरण जानि कर गहि अवलम्बय।।

कल्याणी चालीसा में भक्त की दीनता समर्पण भावना स्पष्ट परिलक्षित होती है –

कल्याणी माँ दीन की सुनिये करुण पुकार।
दुख-द्वन्द्व-दारिद्र्य से तुरत करहु उद्धार।।

सीता चालीसा भी कवि की एक अद्भुत कृति है। माँ सीता के गुणों की वन्दना में वे लिखते हैं –

मातु मैथिली देवि अनन्या।
धरा भई तुम ही ते धन्या।।
क्षमा, दया-क्षमता तुम ही माँ।
वत्सलता-ममता तुम ही माँ।।
तुम शुभ सद्गुण की फुलवारी।
सब लोकन में महिमा न्यारी।।

यह पुस्तक श्रीरामकृपास्तोत्र, श्रीहनुमत्-हुंकार, सौभाग्य मारुतिरक्षास्तोत्रम्, श्रीकृष्णकृपास्तोत्रम् और इन सबकी आरती से संयुक्त है। श्रीकृष्ण की बड़ी सुगेय आरती है, जिसके कुछ अंश उद्धृत हैं –

जय राधावर जय नन्दनन्दन,
जय मुरलीधर जन-मन-चन्दन,
जयति सकल दुख-दोष निकन्दन,
जय आनन्दमूर्ति जगवन्दन,
मोरपंख शिरधारी जय जय !
जय श्रीकृष्ण मुरारी जय जय !!

माँ लक्ष्मी की उपासना संसार के सभी लोग करते हैं। क्योंकि उनके बिना व्यक्ति बेचारा बनकर रह जाता है। महालक्ष्मीस्तोत्र में कवि हार्दिक वन्दना करते हैं –

तुम्हारा सुयश माँ ! सभी लोक गाते,
तुम्हारे कृपा से न फूले समाते,
तुम्हें देवता क्या, असुर भी मनाते,
तुम्हारे बिना जन कहाँ शक्ति पाते,
पड़ा दीन जन यह तुम्हारे सहारे,
महालक्ष्मी माँ ! हरो दुख सारे।।

श्रीमहाकालीकृपास्तोत्र में मंगलाचरण का सोरठा द्रष्टव्य है –

वन्दउँ बारम्बार, महाकालिका के चरण।
महिमा अमित अपार, शोकहरण मंगलकरण।।
गावत वेद पुरान, सुर-नर-मुनि ध्यावत सदा।
करत अभयपद दान, आदिशक्ति अखिलेश्वरी।।

ये स्तोत्र और चालीसा भक्तों के भक्तिवर्धन में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक की अन्य रचनायें भी बहुत उत्कृष्ट एवं मानव जगत को प्रेरणा प्रदान करने वाली हैं।

○○○

बेलूड़ मठ, कार्यकारिणी समिति, २०१३-१४ का संक्षिप्त विवरण

रामकृष्ण मिशन की १०५ वीं वार्षिक साधारण सभा बेलूड़ मठ में रविवार २१ दिसम्बर, २०१४ को अपराह्न ३.३० बजे आयोजित की गयी।

ग्राणीण विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के द्वारा भारत में द्वितीय श्रेणी के (तीन से अधिक वर्षों से कार्यरत) ग्रामीण स्व-रोजगार प्रशिक्षण संस्थानों में समाज सेवक शिक्षण मन्दिर (सारदापीठ, बेलूड़ मठ) को तृतीय सर्वोत्तम संस्थान घोषित किया गया। भारत चैम्बर आफ कॉमर्स ने नरेन्द्रपुर लोकशिक्षा परिषद को पर्यावरण सुधार में विशेष योगदान हेतु बी. पी. पोद्दार स्मृति पुरस्कार से पुरस्कृत किया है।

संस्कृति मन्त्रालय, भारत सरकार ने १२ जनवरी, २०१४ को विज्ञान भवन, नई दिल्ली में स्वामी विवेकानन्द के १५० वें जन्म-जयन्ती के समापन समारोह का आयोजन किया। पश्चिम बंगाल के माननीय राज्यपाल ने १० जनवरी, २०१४ को रेड रोड (कोलकाता) में आयोजित जनसभा में स्वामी विवेकानन्द के १५०वें जन्म-जयन्ती समारोह का समापन किया। तमिलनाडू के माननीय मुख्यमन्त्री ने तमिलनाडू के ९ विश्वविद्यालयों में स्वामी विवेकानन्द के नाम पर उच्च शोध एवं शिक्षा-केन्द्रों के स्थापना की घोषणा की। देश के विभिन्न भागों में २०१० में प्रारम्भ किये गये चार वर्षीय सेवाप्रकल्प अपने अन्तिम चरण में पहुँच चुके हैं। ८ अक्टूबर, २०१० से लेकर ३० जून, २०१४ तक केन्द्र सरकार द्वारा अनुदानित उन सेवाप्रकल्पों में ८३.५२ करोड़ रुपये खर्च किये गये। एक संक्षिप्त प्रतिवेदन संलग्न है। इस वर्ष के दौरान 'राय विला', दार्जिलिंग में (जहाँ भगिनी निवेदिता का निधन हुआ) रामकृष्ण मिशन के एक केन्द्र का शुभारम्भ किया गया। बंगलादेश के धोर्ला में मिशन के चिटागोंग केन्द्र का एक उपकेन्द्र खोला गया।

शिक्षा क्षेत्र में निम्नलिखित नयी गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (१) विवेक नगर (त्रिपुरा) द्वारा संचालित व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र को औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र में उन्नत किया गया। कोठार (उड़ीसा) ने कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र खोला। दिल्ली केन्द्र ने 'जागरण' नामक ५ मापांक एक मूल्य-बोध शिक्षा कार्यक्रम विकसित किया, जिसका कार्यान्वयन दिल्ली एवं इसके आसपास के ५० विद्यालयों में किया गया।

चिकित्सा क्षेत्र में निम्नलिखित नयी गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (१) लखनऊ अस्पताल में ५ शय्यावाली सघन थेरेपी-चिकत्सा इकाई सहित हृदय-शल्य-चिकित्सा कक्ष जनसेवार्थ समर्पित किया गया। साथ ही उन्नत फाको इमल्सिफिकेशन इकाई, कोबलेटर शल्य चिकित्सा उपकरण (आँख, कान, नाक हेतु), फाईब्रोप्टिक ब्रोंकोस्कोप आदि का संयोजन किया गया। ईटानगर अस्पताल में होयमोडायलिसि मशीन, यू.जी.आई. विडियो इन्डोस्कोपी, फोटोथेरपी आदि का संयोजन किया गया। सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता में स्वामी विवेकानन्द रोग-निदान एवं हृदय-चिकित्सा केन्द्र का शिलान्यास किया गया।

ग्रामीण विकास के क्षेत्र में निम्नलिखित नये प्रकल्प विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं : (१) राँची (मोराबादी) केन्द्र ने सार्वजनिक जलसंभर प्रबन्धन कार्यक्रम के अन्तर्गत १८१ परिस्रवण कुण्ड का निर्माण करवाया, समोच्च खुदाई (Contour Trenching) की १२० इकाइयों को निर्मित करवाया, तथा १०५२ किसानों के बीच धान, गेहूँ, सरसों, विभिन्न प्रकार के दाल आदि फसलों का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया। (२) नरेन्द्रपुर केन्द्र ने ५ व्यावसायिक इकाइयों में पिछड़ी जाति के लोगों की कार्य-कुशलता बढ़ाने हेतु पश्चिम बंगाल अन्तर्गत दक्षिण २४ परगना जिले के गोसाबा तथा बाँकुड़ा जिले के मटगोडा में दो सामुदायिक कॉलेज खोले। प्रत्येक कॉलेज में २५० प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण ले सकेंगे।

मठ के अन्तर्गत निम्नलिखित नये प्रकल्प विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (१) बागदा (पुरुलिया) में कम्प्यूटर प्रशिक्षण इकाई का शुभारम्भ। (२) मायावती (उत्तराखंड) अस्पताल में शल्य-चिकित्सा-कक्षयुक्त एक पाँच मंजिले अस्पताल भवन का निर्माण। (३) पश्चिम बंगाल के कूचबिहार एवं नाओदा में डिस्पेंसरी भवन का निर्माण। (४) आँटपुर केन्द्र के डिस्पेंसरी में शल्य-चिकित्सा पर्यवेक्षण यंत्र तथा दूसरे ओफथालमिक उपकरणों का संयोजन।

भारत के बाहर की निम्नलिखित गतिविधियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (१) शिक्षा मंत्रालय , सिंगापुर ने सिंगापुर के सारदा बालविहार को प्रतिष्ठापूर्ण (ECDA) Teaching and Learning Award 2013 तथा बालविहार के प्राचार्य को ECDA Outstanding Early Childhood Leader Award 2013 से सम्मानित किया। (२) फिजी केन्द्र ने उस देश में प्रशंसनीय सामुदायिक सेवाकार्य कर भारत का सम्मान बढ़ाने हेतु भारत सरकार से प्रवासी भारतीय सम्मान

पुरस्कार प्राप्त किया। इस वर्ष मठ और मिशन ने १०.८६ करोड़ रुपये खर्च कर देश के विभिन्न भागों में कई राहत तथा पुनर्वास के कार्य किये, जिनमें करीब १.२० लाख परिवार के ४.१५ लाख सदस्य लाभान्वित हुए। निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति, वृद्ध, बीमार तथा असहाय लोगों को आर्थिक सहायता आदि कल्याण-कार्यों में १४.७४ करोड़ रुपये खर्च किये गये, जिससे २८.५९ लाख लोग लाभान्वित हुए।

१५ अस्पतालों, १११ डिस्पेनसरियों, ५९ सचल चिकित्सा इकाइयों तथा १२५५ चिकित्सा-शिविरों के माध्यम से ८३ लाख से अधिक रोगियों को चिकित्सा-सेवा प्रदान की गयी, जिसमें १६६.७१ करोड़ रुपये खर्च हुए।

हमारे शिक्षा-संस्थानों (बाल-विहार से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक), अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों, रात्रि-पाठशालाओं तथा कोचिंग केन्द्रों में करीब ३.४५ लाख विद्यार्थी शिक्षारत रहे। शिक्षा-कार्य में २७६.५६ करोड़ रुपये खर्च किये गये। ५२.४५ करोड़ की लागत पर ग्रामीण तथा आदिवासी विकास-योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया जिससे ३०.७३ लाख ग्रामीण लोग लाभान्वित हुए।

इस अवसर पर हम अपने सदस्यों एवं मित्रों को उनके सतत सहयोग हेतु हार्दिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं।

२१ दिसम्बर २०१४ (स्वामी सुहितानन्द)
महासचिव

स्वामी विवेकानन्द के १५०वें जन्मवर्ष-स्मरणोत्सव

केन्द्रीय सरकार के अनुदान पर आधारित सेवा प्रकल्पों की ०८-१०-२०१० से ३०-०६-२०१४ तक की प्रगति का एक संक्षिप्त विवरण – **१.** गदाधर अभ्युदय प्रकल्प (सर्वांगीण बालविकास प्रकल्प) : २३ राज्यों में १७४ केन्द्रों के द्वारा लगभग १८,१०० बच्चे लाभान्वित हुए। कुल २४५९.४८ लाख रुपये खर्च किये गये। **२.** विवेकानन्द स्वास्थ्य परिसेवा प्रकल्प (शिशु तथा माताओं के लिये) : २२ राज्यों में १२६ केन्द्रों के जरिए लगभग १३,५०० शिशु तथा माताएँ लाभान्वित हुए। कुल १,६८९.२९ लाख रुपये खर्च किये गये। **३.** सारदा पल्लीविकास प्रकल्प (महिला स्व-सशक्तिकरण प्रकल्प) : ८ राज्यों में १० केन्द्रों के द्वारा लगभग १६१९ महिलाओं का कल्याण हुआ, जिसमें १९१.१८ लाख रूपये खर्च हुये। **४.** स्वामी अखण्डानन्द सेवा प्रकल्प (गरीबी उन्मूलन हेतु) : ६ राज्यों में १० केन्द्रों के द्वारा लगभग ११३५ लोगों का कल्याण हुआ, जिसमें १६१.१० लाख रुपये खर्च हुये। **५.** विशेष सेवा कार्यक्रम (पेशाधारियों तथा माता-पिताओं के लिये) : ११ राज्यों के १८ इकाइयों के माध्यम से ३३५० लोग लाभान्वित हुए। इसके तहत ७९.२४ लाख रुपये खर्च किये गये। **६.** प्रकाशन प्रचार-माध्यम प्रकल्प : कुल २८.४९ लाख पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। स्वामीजी के जीवन और वाणी पर २३ भारतीय भाषाओं में १२.६८ लाख पुस्तकों तथा २ विदेशी भाषाओं (जर्मन एवं जुलु) में ४००० पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। इसके अतिरिक्त स्वामीजी के ऊपर १० भाषाओं में १७ अन्य शीर्षक से १४ लाख पुस्तकों का प्रकाशन किया गया। इसमें ४८५.६३ लाख रुपये खर्च हुए। **७.** युवाओं के लिये विशेष कार्यक्रम : **८** राज्यों में १० युवा-परामर्श केन्द्र की शुरुआत की गयी जिसके माध्यम से ४८६० युवाओं को परामर्श दिये गये, २ राष्ट्रीय स्तरीय युवा-सम्मेलनों का आजोजन किया गया जिनमें १९,००० प्रतिनिधियों ने भाग लिया, ५ क्षेत्रीय युवा-शिविर आयोजित हुए जिनमें कुल ११,५९४ प्रतियोगियों ने भाग लिया; १४ राज्य-स्तरीय युवा-सम्मेलन आयोजित हुए जिनमें कुल ५८,३२४ प्रतियोगियों ने भाग लिया; दीर्घकालीन श्रेणीबद्ध मूल्यबोध-शिक्षा कार्यक्रम आयोजित किये गये जिसमें (क) १४ राज्यों में ३९७ अनौपचारिक इकाइयों के माध्यम से २३९ संस्थानों के १७,६५४ छात्र लाभान्वित हुए (ख) १६ राज्यों में २,६९२ कक्षा आधारित इकाइयों के द्वारा ७६७ विद्यालय के १,२०,८७० छात्र लाभान्वित हुए, इसमें २४३४.१४ लाख रुपये खर्च किये हुए। **८.** इलेक्ट्रॉनिक प्रचार-माध्यम प्रकल्प : स्वामी विवेकानन्दजी के उपदेशों पर आधारित 'भारतीय नारी' शीर्षक डी.वी.डी. तथा स्वामी विवेकानन्दजी के जीवन एवं उपदेशों पर आधारित 'एक कवि, एक मानव, एक संन्यासी' शीर्षक वृत्त-चित्र तैयार किये गए। 'व्यक्तित्व विकास' तथा स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा विषयों पर मल्टीमीडिया ई-पुस्तक बनायी गयी। इसमें २२४.१५ लाख रुपये खर्च हुए।

९. सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रकल्प : धार्मिक सद्भावना विषय पर १३ राज्यस्तरीय सेमिनार, १२ राज्यों में सर्वधर्म-सभा, ११ राज्यों में अनेकता में एकता विषय पर सम्मेलन, आदिवासी तथा लोक-संस्कृति पर ५ क्षेत्रीय कार्यक्रम तथा १४ राज्यों में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये जिसमें ५२९.८१ लाख रुपये खर्च हुए। उपर्युक्त परियोजनाओं में कुल ८३.५२ करोड़ रुपये व्यय हुए। ❍

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

कन्या उ.मा. शाला, रायपुर में रथ का स्वागत वहाँ की प्राचार्या और छात्राओं के द्वारा १०.३० से ११.३० बजे तक किया गया। वहाँ छात्राओं ने लाइन में लगकर स्वामीजी के रथ को चारों ओर से घेरकर पुष्पवृष्टि कीं। कई छात्राओं ने गीत गाए, सबसे अन्त में स्वामी सत्यरूपानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने बच्चों को सम्बोधित किया। फिर रथ निकल पड़ा अपने अगले गन्तव्य की ओर।

बंगाली काली बाड़ी, रायपुर में रथ ११.४५ बजे पहुँचा। वहाँ छत्तीसगढ़ बंगाली एसोसिएशन के अध्यक्ष श्री अरुण भद्रा ने अपने समिति के लोगों के साथ रथ का भव्य स्वागत किया। एक बड़े शामियाने में एक ओर काफी संख्या में स्कूल के बच्चे और दूसरी ओर बहुत से भक्तगण बैठे हुए थे। सभी लोग एक-एक करके रथ में जाकर स्वामीजी के चरणों में फूल चढ़ाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे। वहाँ स्वामी सत्यरूपानन्द जी और अन्य बहुत से अतिथियों ने स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन-चरित पर प्रकाश डाला।

दानी कन्या उ.मा. शाला, रायपुर में रथ १२.३० बजे से २.०० तक रहा। वहाँ के प्राचार्य, शिक्षिकाओं और छात्राओं ने पुष्प, माला से रथ का स्वागत किया। स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वहाँ के प्राचार्य ने स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों से विद्यार्थियों को अवगत कराया। वहाँ की छात्राओं ने स्वामीजी पर एक नाटक प्रस्तुत किया

शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला महाविद्यालय, रायपुर में २.०० बजे से २.३० तक रथ का स्वागत वहाँ की अध्यापिकाओं और छात्राओं के द्वारा किया गया।

शासकीय नवीन कन्या महाविद्यालय, रायपुर (दूधाधारी मठ के पीछे) स्वामीजी का रथ ३.०० बजे पहुँचा और ५.३० बजे तक वहाँ विभिन्न कार्यक्रम होते रहे। वहाँ की प्राचार्या श्रीमती अरुणा पालटा ने अपनी अध्यापिकाओं और छात्राओं के साथ रथ का भव्य स्वागत किया। वहाँ की प्राध्यापिका डॉ. प्रीता लाल जी ने स्वागत-भाषण किया। तत्पश्चात् स्वामी सत्यरूपानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने छात्राओं को सम्बोधित किया। छात्राओं ने सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किए। अपने विद्यालय के नये परिसर में पहली बार ऐसा भव्य उत्सव करके विद्यालय-परिवार अतिशय प्रसन्न था

शुक्रवार, दिनांक ३१ जनवरी, २०

मदर्स प्राइड स्कूल, खम्हरिया, दुर्ग में ९.०० से १०.०० बजे तक कार्यक्रम था। इसके लिये हमें ७.३० बजे आश्रम से निकलना पड़ा। वहाँ की संस्थापिका प्राचार्या श्रीमती उमा तिवारी ने अपने विद्यालय परिवार के साथ रथ का बड़ा भव्य स्वागत किया। स्कूल के सामने बड़ी सुन्दर रंगोली बनाई गयी थी। ठीक उस रंगोली के सामने ही रथ को खड़ा करके एक-एक करके सभी छात्र-छात्राओं, अध्यापक-अध्यापिकाओं ने स्वामीजी के चरणों में सुमन चढ़ाए और गले में माला पहनायी। स्वामीजी के स्वागत में १८ बालक-बालिकाएँ स्वामीजी के ड्रेस में खड़े थे। एक अन्य दल आगे-आगे बैंड बजाकर स्वामीजी का स्वागत कर रह था। उसके बाद स्कूल के हॉल में सभा हुई। बच्चों ने स्वागत-गान और बहुत से सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, प्राचार्या श्रीमती उमा तिवारी और कई बच्चों ने स्वामीजी के जीवन पर व्याख्यान दिये। ध्यान रहे यह वही स्कूल है, जिसने विश्व में पहली बार २७ नवम्बर, २०१२ को ५८० बच्चों को स्वामी विवेकानन्द जी के ड्रेस में सजाकर समस्त विश्व को प्रेरणा दी थी। यहाँ हम ११ बजे तक रहे। उसके बाद रथ रायपुर की ओर प्रस्थान किया। **(क्रमशः)**

भावग्राही जनार्दनः

जब चैतन्यदेव दक्षिण में तीर्थ-भ्रमण कर रहे थे, तो उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति गीता पढ़ रहा है। एक दूसरा व्यक्ति थोड़ी दूर बैठकर उसे सुन रहा है और रो रहा है, आँखों से आँसू बह रहे हैं। चैतन्यदेव ने पूछा, 'क्या तुम यह सब समझ रहे हो?' उसने कहा, 'प्रभु, इन श्लोकों का अर्थ तो मैं नहीं समझता हूँ।' उन्होंने पूछा, 'तो रोते क्यों हो?' भक्त ने उत्तर दिया, 'मैं देखता हूँ कि अर्जुन का रथ है और उसके सामने भगवान और अर्जुन बातचीत कर रहे हैं। बस, यही देखकर मैं रो रहा हूँ।'

– श्रीरामकृष्ण परमहंस
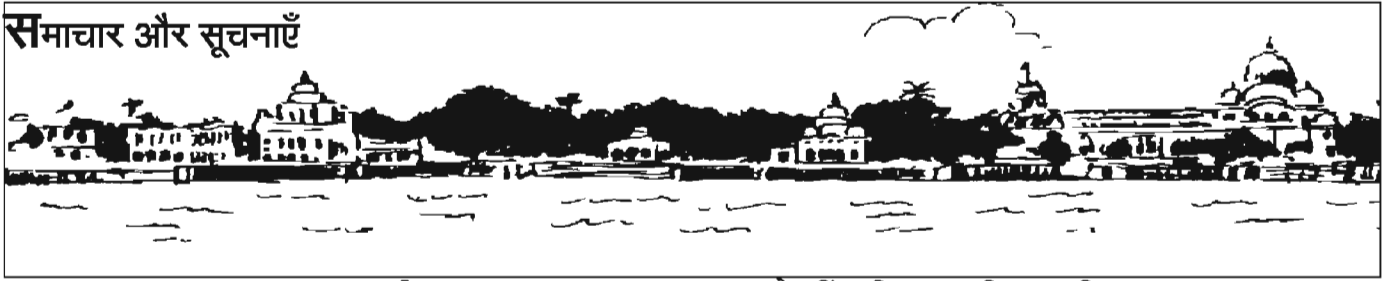
हुडहुड चक्रवात राहत कार्य : रामकृष्ण मिशन, विशाखापट्टनम केन्द्र द्वारा १५० कि.ग्रा. शक्कर, ३०० बिस्किट पैकेट, १०० नोटबुक आदि का चक्रवात-ग्रस्त लोगो में वितरण किया गया। इसके अलावा श्रीकाकुलम, पश्चिम गोदावरी और विशाखापट्टनम जिलों के १० क्षेत्रों के ९४१ परिवारों को १८५२ कम्बल, ९४१ लालटेन का वितरण २८ से ३० नवम्बर के बीच किया गया।

बाढ़ राहत कार्य : **जम्मू-कश्मीर** में बाढ़ और भू-स्खलन ग्रस्त लोगों के राहत कार्य को जारी रखते हुए रामकृष्ण मिशन, जम्मू ने ७ जिलों के ५० परिवारों को १००० कोरूगेटेड शीट्स, २०० लौह पाईप, २५ कम्बल, २५ शॉल, २५ जैकेट, और २५ बर्तन-सेट का वितरण २९ और ३० दिसम्बर को किया।

उत्तराखण्ड स्थित **देहरादून आश्रम** ने चमोली और रुद्रप्रयाग में अपने बाढ़-राहत को जारी रखते हुए अगस्त से अक्तूबर, २०१४ के बीच १४ जिलों के ८८८ परिवारों को २२,२०० कि.ग्रा. चावल, ४२४० कि.ग्रा. दाल, ४२४० लीटर खाद्य तेल, १६९६ कि.ग्रा नमक, २०० कम्बल, ४५ स्लीपिंग बैग्स, ७० जॅकेट, ४५० स्वेटर, १५० सौर लालटेन, ८९६८ नोटबुक और ३००० स्कूल बैग बाँटे।

श्रीलंका में भयानक वर्षा के कारण हुई बाढ़ में राहत कार्य प्रारम्भ करते हुए **कोलम्बो आश्रम** अन्तर्गत बाट्टीकोला उपकेन्द्र ने ७१० कि.ग्रा. चावल, १०६ कि.ग्रा. शक्कर और १४२ माचिस बाट्टीकोला जिले के ७१ परिवारों में बाँटे। इसके अलावा आश्रम के समीपवर्ती ९ परिवारों में ४५ कि.ग्रा. चावल, १३ कि.ग्रा. दाल, ९ कि.ग्रा. दूध पावडर और १८ कि.ग्रा. आटे का वितरण किया गया।

आर्थिक सहायता : आँटपुर केन्द्र ने १२३ बुनाई यन्त्र सेट, ४१ सिलाई मशीन और २ रिक्शाओं का वितरण २५ नवम्बर से १४ दिसम्बर के बीच किया। **चण्डीपुर** (प. बंगाल) आश्रम ने २१ नवम्बर को २ सिलाई मशीनें और **खेतड़ी** (राजस्थान) ने १३ दिसम्बर को २८ सिलाई मशीनें बाँटी। **नरोत्तम नगर** (अरुणाचल प्रदेश) आश्रम ने ३० नवम्बर को २० सिलाई मशीन एवं ३४ टेलरिंग किट का वितरण किया।

१० नवम्बर, २०१४ को श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर के श्रीरामकृष्ण मन्दिर में आध्यात्मिक प्रवचन का आयोजन किया गया, जिसमें विवेकानन्द आश्रम, श्यामलाताल के सचिव स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने हिमालय स्थित अपने श्यामलाताल आश्रम के आध्यात्मिक परिवेश और वहाँ की जानेवाली सेवाओं को विस्तार और रोचकता से भक्तों को अवगत कराया। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने 'छत्तीसगढ़ में स्वामी विवेकानन्द रथ-प्रवास के महत्त्व और प्रभाव' पर व्याख्यान दिया और अन्त में श्रीरामकृष्ण के उपदेशों पर प्रकाश डाला।

११ नवम्बर, २०१४ को श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर, (छत्तीसगढ़) द्वारा शबरीनारायण के महाविद्यालय के बी.एड. विभाग में छात्राध्यापकों के लिये एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें 'स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा-दर्शन' इस पर स्वामी अव्ययात्मानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने व्याख्यान दिए। डॉ. लक्ष्मण प्रसाद मिश्र जी ने स्वागत भाषण और श्री योगेश शर्माजी ने संचालन किया।

१३ नवम्बर, २०१४ को **रामकृष्ण विवेकानन्द, विद्यापीठ, बिजुरी, छत्तीसगढ़** में ९.१५ बजे छात्र-छात्राओं के लिये व्याख्यान आयोजित किया गया, जिसका विषय था, 'सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास कैसे करें?'

स्वामी अव्ययात्मानन्द जी महाराज ने बच्चों को विभिन्न दृष्टान्तों से उनके जीवनोपयोगी तथ्यों को बड़े रोचक ढ़ंग से बताया। स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी एकात्मानन्द जी ने भी बच्चों को सम्बोधित किया।

चिरमिरी में सभा

१३ नवम्बर, २०१४ को शाम ५ बजे श्रीरामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर के तत्त्वावधान में चिरमिरी के काली मन्दिर में एक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें स्वामी अव्ययात्मानन्द जी और स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने श्रीरामकृष्ण के जीवन और उपदेशों पर प्रवचन दिये। OOO